FOREWORD.

The present book was written by the great Hindi poet Dev Dutta allias "Deo," 243 years before during the reign of Aurangzeb the, Moghal Emperor. In those days Urdu was briskly taking the place of Hindi in Northern India. In such a time, this great poet, added a bright jewel to the treasure of Hindi literature in the form of this book. When Aurangzeb was busy in conquering the south our poet accompanied his second son Azamshah. Thus "Shringarvilasni" was written in the Deccan. The unique beauty of this book lies in the fact that the poet who was a brilliant writer of Hindi prosody, wrote Sanskrit Verses in Hindi metres viz. Doha, Sortha, Kavittas, and Chhappaya. This shows his great command on both the languages. The poetry is so charming that it compares with that of Jeydeo the greatest Sanskrit poet of Bengal. Besides being a beautiful piece of interesting and simple poetry ,it is also a work on poetics (Riti-granth). The diction is very easy. The subject matter goes directly to the heart of the reader. Such a work has not been published any where in Hindi knowing world. We do not see any such book mentioned even in the great catalogues of the world such as catalogues of

catalogrum of Germans. The present work gives the poet Deva a very high place among Hindi poets. The present book gives us his place of birth, his father's name and the subscription of different places where he lived with honour and respect, and composed his works.

In this work the reader will also find the description of twenty other unpublished books of "Deva" with the dates in which they were written, with specimens of their style—the books which are not mentioned even in the famous book called Misra Bandhu Vinod. The reader will find here much useful, great attractive and authentic matter. The book has been printed on antique paper, after making necessary corrections by comparing with old MSS. It should be considered as one of the "Deva's Purushkar granthawali Series". It is hoped that every lover of literature will encourage the compiler by adding a copy of the book to his library. The mistakes which we also see due to the old defaced and hardly readable portion of the MSS. will be corrected in the next Edition.

G. C. Dikshit.
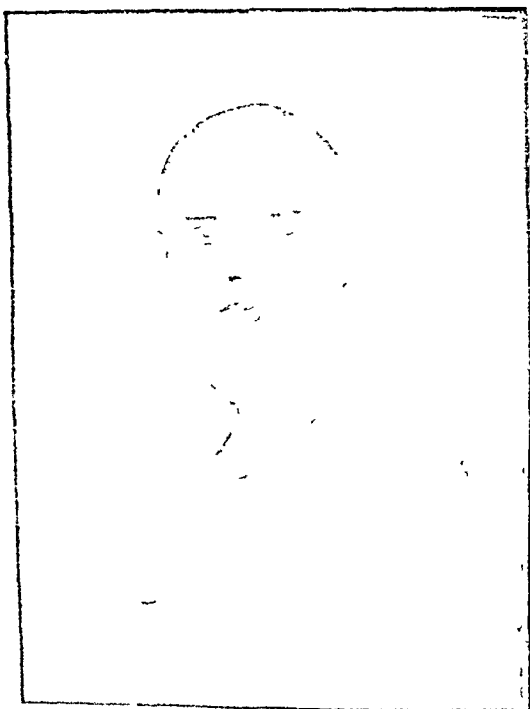
श्री शुकदेव सम्प्रदायाचार्य

'विद्यासुधाकर' श्री १०८ महन्त स्वामी गंगादासजी महाराज

माफ़ीदार, जागीरदार तथा ज़िमींदार,

देहली ।

समर्पण

प्रातः स्मरणीय ! आचार्य चरण !

जहाँ आप भारत के एक गण्यमान्य सम्प्रदाय के लब्धप्रतिष्ठ एवं वन्दनीय धर्माचार्य हैं, वहाँ आपका आदर्श कवित्व, साहित्यमर्मज्ञता तथा प्रकाण्ड पाण्डित्य भी सर्व विदित है। इन सब आदरणीय गुणों के साथ-साथ आप भारतवर्ष की राजधानी देहली के भूषण हैं। अतएव उन महाकवि देव की उस कृति को जो कि देहली के सम्राट् शाह आलम को सुनाई गई थी, कि जिसके फलस्वरूप उस मूर्द्धन्य महाकवि को शाह के मित्र होने का सम्मान प्राप्त हुआ था। उन देव की कृति के समर्पण के आप सर्वथा उपयुक्त पात्र हैं और विशेषतः जब कि आप भी शाह आलम द्वारा सम्मानित उन्हीं आचार्य की गद्दी पर आसीन हैं। जिनको कि जागीर स्वरूप कई गांव देकर मुगल सम्राट् ने श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी और जिनके कि महाकवि देव निकट-तम स्नेही एवं कृपाभाजन तथा समकालीन थे। अतएव उस पवित्र विभूति की पावन कृति आपके चरणों में सादर समर्पित है।

विनयावनत—

सम्पादक

❀ अनुक्रमणिका ❀

भूमिका भाग ।

विषय		पृष्ठ

पृष्ठ

प्रकाशक के दो शब्द

मैं अपने प्रिय मित्र श्री पं० गोकुलचन्द्र जी दीक्षित सिद्धान्त-वाचस्पति के विषय में किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकाशन करूँ, मैं गद्‌गद् हो रहा हूँ, मेरे को ऐसे उचित और ललित शब्द कि जिन्हें मैं कहना चाहता हूँ ढूँढ़ने से भी नहीं मिलते; कि जिनमें उनका पूर्ण सम्मान एवं अभिनन्दन किया जा सके। परन्तु मैं इतना अवश्य कहूँगा कि श्री दीक्षित जी भरतपुर राज्य में उन साहित्य-सेवियों में से हैं कि जिन्होंने अपने जीवन को निःस्वार्थ भाव से केवल साहित्य हित के लिये अर्पण कर रक्खा है और जिस तन्मयता से वह साहित्य की सेवा कर रहे हैं वह हिन्दी संसार में अमूल्य एवं महत्व की प्रमाणित होगी। आप स्वतंत्र विचार के एक अन्वेषक वृत्ति के महानुभाव हैं। आपने अपने जीवन में २० से ऊपर न्याय, सांख्य और वेदान्त दर्शन तथा अन्यान्य इतिहास, ज्योतिष जैसे बड़े-बड़े उच्च कोटि के विषयों पर ग्रन्थ लिख कर सरस्वती देवी के भंडार को भरा है। आप कई भाषायें जानते हैं और आपका सार्वदेशीय पाण्डित्य है। आप सनातन वैदिक सिद्धान्त को स्वच्छन्द रूप से जीवन में ढाले हुये हैं। आपने मुझे २३४ वर्ष पुरानी इस अनुपम अप्रकाशित पुस्तक का प्रकाशक बना कर जो गौरव प्रदान किया है उस निस्पृहता के लिये मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

पुनश्च जब कि दीक्षित जी को बहुकार्य भार से रात-दिन में कुछ मिनिटों की भी फुरसत नहीं है। तब मैंने जो तकादा रूपी अमोघ शस्त्रों से पं० जी को बार-बार मर्माहत किया है। उसके लिए मुझे किंचित्मात्र न तो खेद और नाहीं पश्चात्ताप क्योंकि इस प्रकार शीघ्र पुस्तक प्रकाशित होने से साहित्यक जनता का उन्हें अत्यन्त शुभाशीर्वाद प्राप्त होगा।

ब्रह्मदत्त शास्त्री

भरतपुर स्टेट।

भूमिका

"ऊँच नीच तनु कर्म वश, चल्यो जात संसार।
रहत भव्य भगवन्त यश, नव्य काव्य सुखसार॥"

(देव)

महाकवि देवजी का आत्म-परिचय

प्रणम्य परमात्मानं, गिरानन्दं च सद्गुरुम् ।
देववाणी विलासाय, ग्रन्थः सम्पाद्यते मया ॥

जन्म

अप्रतिम प्रतिभाशाली महाकवि देवदत्त उपनाम "देव" जी का शुभ जन्म विक्रम सम्वत् १७३०* में हुआ था। उन्होंने स्वयं अपने इस जन्म सम्वत् का संकेत "भाव विलास" नामक ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार किया है।

---

* "शिवसिंह सरोजकार" ने सं० १६६१ में और "भारत के धुरन्धर कवि" के लेखक ने ई० सन् १५८४ अर्थात् वि० सं० १६४१ में और "हिन्दी फाइनल रीडर" में सं० १६७२ में जन्म माना है अतः यह तीनों समय इसलिये अप्रमाण्य हैं कि देवजी के स्वयं लिखित सम्वत्-संकेत के सर्वथा विरुद्ध हैं।

"सुभ सत्रह सौ छियालिस, चैत्र सोरहीं वर्ष।
कढ़ी देव-मुख देवता, भाव विलास सहर्ष॥" ‡

\+ + + +

स्थान

सु-प्रसिद्ध कवि देवजी "इष्टिकापुरी"※ वर्त्तमान "इटावा" के लालपुरा मुहल्ले के निकट अस्तल मुहल्ला में रहा करते थे। इनके वंशज बहुत दिनों से लालपुरा, अस्तल, छिपैटी और घटिया आदि मुहल्लों में रहते आये थे, परन्तु 'लखुना' के "राव खड़्गराव" के मँझले पुत्र "राव छत्रसाल" जी † के इटावे से पुरावली चले जाने के कारण, कवि नायक सुकवि देवजी भी पुरावली चले गये; और शेष इनके कुटुम्बी जन इटावा से ३२ मील की दूरी पर "कुसमरे" नामक गाँव में उठ गये और वहाँ पर अब तक बस रहे हैं; परन्तु इनकी एक वंश-शाखा अभी तक इटावे में भी रह रही है।

---

‡ मिश्रबन्धु विनोद में "चढ़त सोरही वर्ष", और "चैत्र" दोनों पाठ हैं।

※ इष्टिकापुरी इटावे का बहुत पुराना नाम है। यहाँ के अन्य कवियों ने भी अपने इटावे का पुराना नाम "इष्टिकापुरी" ही लिखा है। मधुसूदन माथुर ब्राह्मण कवि इष्टिकापुरी के रहने वाले थे।

भवानी विलास—प्रकाशित भारतजीवन प्रेस, तथा शिवसिंह सरोजकार इन्हें समाने-गाँव ज़ि० मैनपुरी निवासी मानते हैं अतः यह भी इस लेख के आगे माननीय नहीं।

† मेरा लिखा हुआ "लखना राज का इंतिहास" देखिये।

वंश

देवजी ने अपने को "दुसरिहा ब्राह्मण" लिखा है। कान्य-कुब्ज § द्विवेदी ब्राह्मणों में 'दुसरिहा अथवा धौसरिया' ब्राह्मणों का एक वर्ग है। भाव विलास में इसका प्रमाण मिलता है।

"द्यौसरिया कवि देव को, नगर 'इटायें' वास।
जोवन नवल सुभाव रस, कीन्हो भाव विलास ॥"

\+ + + +

पिता का नाम

कवि देवजी के पिता का नाम "पंडित वंशीधर" जी था। जैसा उन्होंने अपने बनाये हुए "लक्ष्मी दामोदर स्तवन" नामक ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है—

"इयं लक्ष्मी दामोदर नुति "रटेरा" भिधपुरा—
लयेनेत्थं वंशीधर-तनुज देवाख्य कविना
कृता सम्यक् पद्यैर्जगति ललितं 'दीक्षित' पदं
समायातै नाशु प्रवि तर तु पाठाच्छुभ तरं ॥१७॥

\+ + + (शिखरणी)

---

§ कविता कौमुदीकार, मिश्रबन्धु विनोदकार, देव ग्रन्थावली के सम्पादक, हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहासकार तथा डा० ईश्वरीप्रसाद कृत भारतवर्ष का इतिहास में इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण माना है। ठीक इसके विरुद्ध "हिन्दी नवरत्न" के लेखक और साहित्य प्रकाशकार ने इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण होना माना है। मिश्रबन्धु विनोद के लेखक, देव ग्रन्थावली के सम्पादक और हिन्दी नवरत्न के रचयिता एक ही हैं फिर परस्पर व्याघात दोष क्यों आया इसका कारण अज्ञात है।

अन्यत्र भी इसी प्रकार का प्रमाण मिलता है। जैसा उन्होंने स्वयं स्वरचित "शृंगार विलासिनी" नामक ग्रंथ में इसी प्रकार लिखा है—

दो०—देवदत्त कवि रिष्टका, पुरवासी चकार।
ग्रन्थ मिमं वंशीधर, द्विजकुल धुरं वमार ॥११०॥

+ + +

इनका "आस्पद" 'दीक्षित' था जैसा कि उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है। इन कान्यकुब्ज दुसरिहा ब्राह्मणों में "दीक्षित" पाये जाते हैं और इनका काश्यप गोत्र है।

अध्ययन

कवि देवजी संस्कृत* के प्रकाण्ड पण्डित और साहित्य की प्रतिमा थे। इनकी ज्योतिष, वृद्धायुर्वेद, और मंत्र शास्त्र में भी अच्छी गति थी। इन्होंने अपनी बाल्यावस्था में पूर्वार्जित-शुभ-संस्कारों वश, अति अल्प काल में गहन से गहन विषयों पर अधिकार प्राप्त कर लिया था, और पूर्ण प्रतिभा सम्पन्न होकर ललित-कृति-रचना में भी दक्षता प्राप्त करली थी; भला यदि इनमें ईश्वर प्रदत्त काव्य-शक्ति न थी तो १६ वर्ष की अल्पावस्था में वह 'भाव विलास' जैसे उत्कृष्ट, सर्वाङ्ग-रसपूर्ण, प्रधान काव्य रचना में कैसे समर्थ हो सकते थे।

---

* स्वर्गीय ला० भगवानदीनजी ने "विहारी और देव" नामक पुस्तक में व्यर्थ प्रयास कर यह सिद्ध करना चाहा है कि महाकवि देव तो संस्कृत जानते ही न थे। यह अनौचित्य है।

ख्याति

उन दिनों कवि देवजी की कीर्ति उनके व्रजभाषा के अत्युत्कृष्ट कविरत्न होने के कारण ही न हो रही थी, किन्तु विदग्ध भावुकों को आश्चर्य का कोई कोना ढूंढ़े न मिलेगा कि जब वह उनकी संस्कृत कृति का भी उसी भाँति रसास्वादन करेंगे कि जिस प्रकार उन्होंने अब तक उनकी व्रज वाङ्मय कवित्व माधुरी का आस्वादन किया है। वे सम्भ्रान्त संसार के समस्त संस्कृत-काव्य-मण्डल के भी एक स्वीकृत ज्वलन्त एवं उच्चकोटि के परम सिद्धहस्त कवि ही प्रमाणित न होंगे; किन्तु शृंगार-रस-प्रधान संस्कृत के अन्य सत्कवियों की भाँति चमत्कृत-रचना, योग्यता, सम-स्थान-संज्ञानुभव, प्रौढ़-कवित्व-शक्ति, अर्थ-गाम्भीर्य, कृति-गौरव और सूक्ति-मर्यादा आदि में भी वर्द्धमान-तुलनात्मक-स्पर्धा प्राप्त करते हुए किसी प्रकार जब नीचे न उतरेंगे, तब उन्हें संस्कृत और व्रजभाषा दोनों का उद्‌भट कवि मान लेने में किसी को ननु नच भी न होगी।

जीविकार्थ-भ्रमण

महाकवि देवजी की ज्यों-ज्यों कीर्ति-कौमुदी का प्रकाश काव्य-रसिकों को आनन्दित करने लगा त्यों-त्यों इनके भावुक-गण बढ़ने लगे। इन्होंने भी इस नीति वाक्य का अनुसरण किया और देशाटन करना आरम्भ किया कि—

"गम्यतामर्थ लाभाय क्षेमाय विजयाय च"

यद्यपि उन दिनों उत्तर भारत में खड़ी वोली की प्रवृत्ति स्थान पा चुकी थी परन्तु कवि देवजी ने अपनी प्रधान व्रज-भाषा की मनोमुग्ध करने वाली सर्व-भाव-पूर्ण व्रज-माधुरी काव्य-छटा के दिखलाने में .अतीव कौशल प्रकट किया और देहली-राजधानी की ओर प्रस्थान किया। उन दिनों आलमगीर का शासन-काल था*। उसके चार पुत्र थे। दो का नाम क्रमशः मुअज़्ज़म और आज़म था। यह दोनों भाई व्रजभाषा काव्य के मार्मिक प्रेमी थे। इनका यश सत्कवियों को आश्रय देने के लिये फैला हुआ था। कवि देवजी को 'आज़म' ने बड़े प्रेम-पूर्वक आदर दिया और इनकी "अष्टयाम" नामक "कृति" सुन कर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। मुअज़्ज़म और आज़म यद्यपि दोनों सगे भाई थे परन्तु परस्पर में मूषक-बिलाव-वैर गण हो चाहे राज-लिप्सा-वश और चाहे औरंगज़ेबी दुरंगी नीति के कारण यह इतने लड़ा करते थे कि एक दूसरे के लोहू के प्यासे और प्राणों के ग्राहक थे। इधर औरंगज़ेब भीतर ही भीतर मन मुअज़्ज़म को चाहता था। इस मुअज़्ज़म के आश्रित एक शेख रंगरेज़िन का पति "आलम" नामक राजकवि था।

* यों तो औरङ्गज़ेब स्वयं तुर्की, अरवी और फ़ारसी का विद्वान् था ही परन्तु वह इसके सिवाय व्रजभाषा के कवियों को भी आदर देता था। उसके दरवार के कवियों के कतिपय नाम यह हैं:—मदन किशोर, प्रद्युम्न-दास, काशीराम, सामन्त, इन्द्रजी त्रिपाठी, घनश्याम, नाथ, आज़मख़ाँ, रहमान, अब्दुल जलील और ईश्वर कवि प्रसिद्ध हैं।

अतः महाकवि देवजी ने आजम के पास रहना उचित समझा। यह आजम स्वयं भी कविता करता था। सम्वत् १७५७ के कोंकण के आक्रमण के समय महाकवि देवजी आजम के साथ युद्ध में गये थे और उसके साथ इन्हें विभिन्न-भारतीय-जनसमाज के आचार-व्यवहार-व्यवस्था; भाषा-भेष का गहरा मनन करने का अवसर मिला था। कोंकण विजय हो चुकने पर जब औरंगजेब की मृत्यु सम्वत् १७६१ में हुई तो यह भी "आजम" के साथ देहली लौट आये। यहाँ "आजम" और "मुअज्जम" ने राज्याधिकार हथियाने के लिये आगरे के समीप "जाजऊ" के मैदान में प्राणों की बाजी लगा दी। दोनों में घोर संग्राम हुआ। निदान इस गृह-कलह में यह परिणाम निकला कि "आजम शाह" लड़ाई में हारा ही नहीं किन्तु सदैव के लिये संसार से ही उठ गया। अब ऐसे कठिन समय में महाकवि देव का आश्रय नष्ट होने से स्थिति डाँवाडोल हो गई और उन्हें "आज़म" का स्थान भी छोड़ना पड़ा।

यह "आज़म" के कवि तो प्रसिद्ध थे ही देहली के तत्कालीन सुप्रसिद्ध रईस राजा पातीराम कायस्थ के पुत्र राय सुजानमणिजी* ने जो उन दिनों मुग़ल-दरबार में पूर्ण आदरणीय और

---

* "भारतवर्ष का इतिहास" डा० ईश्वरीप्रसाद कृत में इन्हें खत्री लिखा है वह भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है। क्योंकि स्वयं आश्रित कवि देवजी ने कायस्थ लिखा सो ठीक है।

सम्माननीय सरदार थे महा कवि देव को पुरातन प्रीतिवश अपने यहाँ ठहरने को ही स्थान न दिया किन्तु आश्रय भी दिया। यह राय सुजानमणि एक काव्यमर्मज्ञ और कवि-आदर-देय पुरुष थे। फ़ार्सी में इनका लिखा इतिहास है जिसका नाम खुलासतुलतवारीख़ है और मुन्तख़ब्वुत्तवारीख़ के समान प्रामाणिक और आदरणीय है। ऐसे सुयोग्य व्यक्ति ने महाकवि देव का यथोचित सत्कार करके अपने सद्गुणौचित्य का परिचय दिया। महाकवि देवजी ने उनकी प्रसन्नता के लिये सुजान-विनोद नामक काव्य ग्रन्थ की रचना कर उन्हें मनो-मुग्ध किया; परन्तु यह कब सम्भव हो सकता था कि 'आज़म' के अनन्य-प्रेमी महा प्रतिभाशाली कवि देव को कोई सुजानमणि के पास ठहरने देता। सुजानमणि पर शासन का दबाव डाला गया क्योंकि "मुअज्ज़म" उन दिनों देहली के तख़्त पर बहादुरशाह के नाम से शासक बना बैठा था। निस्सन्देह मुअज्ज़म को यह भय हुआ होगा कि कहीं यह महाकवि भूषण की भाँति हमारे वंश के लिये प्रमाणित न हो रहें। महा कवि देव भी देश-काल और अवस्था से परिचित थे वह तुरन्त देहली से सुजानमणि को आशीर्वाद देकर दादरी जिला बुलन्दशहर के राजा भवानीदत्त नामक वैश्य-मणि के यहाँ चले आये। यहाँ आकर उन्होंने "भवानी-विलास" की नींव डाली और बड़ी योग्यता से उसे पूर्ण भी किया परन्तु जा अधिक आदर-भाव से रहने वाला कवि था उसके चित्त में इस परिवर्त्तन से एक प्रकार की ग्लानि हुई और यही

धारणा बँधी कि अपनी जन्म-भूमि अटेर ज़िला भिण्ड राज्य गवालियर चले आये। मार्ग में आते हुए प्रशंसनीय ब्रजभूमि मथुरा और गोवर्धन होते हुए विश्वेन्द्र सवाई महाराजा जवाहरसिंहजी भरतपुर-नरेश के दरबार में पुष्पाञ्जलि के लिये उपस्थित हुए और उनकी प्रशंसा में यह कवित्त पढ़ा—

"एक लंग 'तैमूर' सुना है 'चकत्ता' लोह लत्ता,
तेजतत्ता लौं सुना है तेज ताही का।
दूजा लंग संगर उन्यारा 'छत्रपति' प्यारा,
छीनि लिया छत्र जिन छत्र पातसाही का॥
तीजा लंग 'वंगस' वज़ीर जा भगाया 'देव',
चौथा तू 'जवाहर' है सूरज सवाई का।
दिल्ली नगरी के डग मगरें पुकारैं लोग,
लोहा लँगड़े का यारो ग़जब ख़ुदाई का॥"

भरतपुर राज्य इन दिनों मुग़लों से लोहा लिये हुए था और देवजी देहली से आये ही हुए थे। इन्होंने कतिपय नैतिक कारणों से भरतपुर में अधिक ठहरना उचित न समझा क्योंकि महाराज जवाहरसिंह देहली पर चढ़ने की तैयारी कर रहे थे अतः प्रतीत होता है कि वह कुछ दिनों के लिये रूरूगंज के राजा भोगीलाल जी के यहाँ चले आये। इनके यहाँ इनका इतना अधिक आदर-सत्कार हुआ कि वह सब अगली-पिछली आवभगत भूल गये। राजा भोगीलाल स्वयं अच्छे कवि थे। कवि देवजी ने अपने

जीवन की सफल यात्रा मान कर इनके आश्रित रहते हुए "रस-विलास" नामक महान प्रौढ़-काव्य-ग्रन्थ निर्माण किया। ऐसे गुणज्ञ ही नहीं किन्तु कवि-नरेश के आश्रित महा कवि देवजी के हर्ष का वारापार न रहा। राजा भोगीलालजी के यहाँ "कामेश्वर" नामक दरबार-कवि थे इनकी उनसे घनी मित्रता हो गई। परन्तु अभी भाग्य-चक्र स्थिरता की ओर न झुक पाया था राजा भोगीलाल का जीवन-संस्कार समाप्त हो नश्वर कलेवर थोड़े दिनों पश्चात् इस परम सारभूत संसार से उठ गया और यह क्षुब्ध होकर राणा बहादुर गोहद के राज में चले गये।

महाराणा गोहद से सम्पर्क

जिन दिनों कवि देवजी देहली से अपने घर की ओर लौटे तो रूरूगंज होकर गोहद पहुँचे। उन दिनों गोहद के महाराणा "वखतसिंहजी" गोहद का शासन कर रहे थे। उन्होंने इनके पदार्पण का समाचार सुन कर सम्मानपूर्वक आह्वान भेजा। महाराणा वखतसिंह काव्य-रसिक और कवियों को आदर देने वाले गुणी नृपति थे। इन्होंने महा कवि देवजी को वड़े आदर से अपने पास रक्खा। इन्होंने यहाँ रह कर दो पुस्तकें "वखत विलास" और "वखत विनोद" बनाईं।

राणा माधवसिंहजी से प्रेम

ऐसा प्रतीत होता है कि वखतसिंह के उत्तराधिकारी राणा माधवसिंहजी हुये और इन्होंने भी अपने पूज्यों की भाँति महा

कवि देव का समानादर किया और कवि देवजी ने इनके विनोदार्थ "माधव गीत" नामक राग-रागनियों में एक सुन्दर काव्य-गीतिका की रचना की। परन्तु महा कवि देव का हृदय अभी तक सन्तुष्ट न था निदान गोहद से ग्वालियर होकर ज़िला इटावा के राजाओं के दरबारों की सैर करनी चाही। आश्रय-दाता का न मिलना और काव्य-वल्लरी को जीवित रखना दोनों कठिन समस्यायें थीं। इसी धुन में एक कविताप्रेमी-वंश इनके भाग्य से इनको मिल गया और औरैया ज़िला इटावा निवासी श्री भवानीदत्त नामक धन-जन सम्पन्न कविता-कलापी पुरुष जो वैश्य वंशोद्भव उदार चरितवान था उसके यहाँ डेरे आ जमाये। यहाँ रह कर इन्होंने "भवानी विलास" नामक ग्रन्थ की रचना की। परन्तु अभी इनके चित्त को व्यवस्थित करने वाली स्थिति ही हाथ न पड़ी थी। यहाँ से भी चित्त का उच्चाटन हुआ और किसी दूसरे कविता-रसज्ञ के यहाँ जाने की भावना उत्पन्न हुई। यतः "गुन ना हिरानो गुण ग्राहक हिरानो है" की बात अभी तक भारत में इतनी ऊँची दर पर न चढ़ सकी थी. इनका एक योग्य-पुरुप से परिचय हो गया।

कुशलसिंह से परिचय

फफूँद ज़िला इटावा के शुभकरन के पुत्र कुशलसिंह सेंगर के यहाँ आकर आपने काव्यामृत प्रवाहित कर दिया। इस प्रेमी ने भी बड़े ही आदर भाव से इनको स्थान एवं मान दिया। यहाँ पर

रह कर इन्होंने "कुशल विलास" की रचना कर डाली। कुछ दिनों ठहरने के पश्चात् इनके मनीराम यहाँ भी मौज से न रम सके और अपना डेरा अन्यत्र ही जमाने की सोचने लगे। अन्ततो गत्वा इन्हें एक वैश्य-वंशी उदार महानुभाव मिल गये कि जिनका नाम उद्योतसिंह था।

उद्योतसिंह वैस द्वारा सम्मान

कुशलसिंह सेंगर के यहाँ से उठ कर महा कवि देवजी श्री मरदनसिंहजी के पुत्र उद्योतसिंहजी सेंगर रईस क्योंटरा ज़िला इटावा के रहने वाले के यहाँ चले आये और यहाँ निवास कर इन्होंने "प्रेम-चन्द्रिका" की नींव डाली। इन दिनों इनकी अक्षय कीर्ति-लहरी हरी भरी लहलहा रही थी। इस फैले हुए यश के कारण इन्हें अड़ौस-पड़ौस के रजवाड़ों से बुलावे आते थे परन्तु यह आश्रित के भिन्न मत कभी न चलते थे। ये उद्योतसिंह की आज्ञा लेकर चक्रनगर के राजा महेन्द्रसिंह के यहाँ उनके आमंत्रित करने पर चले जाने का आयोजन करने लगे। घटना वश ऐसा हुआ कि चक्रनगर के राजा के यहाँ जाने का विचार स्थगित कर पास के पास लखना ज़िला इटावा के राव खड्गराय के पुत्र छत्रसाल जी के यहाँ चले गये। एक समय यह छत्रसालजी घर की अनवन के कारण भरतपुर महाराज के यहाँ इन्हीं महाकवि देवजी के बतलाये हुये मंत्र के अनुसार बहुत दिनों तक भरतपुर राज्य की "पुर-

विया पल्टन" के "रिसालदार" के पद पर रह गये थे। इन्हें भरतपुर में भेजना इन्हीं महाकवि देव के भरतपुरी परिचय और प्रभाव के कारण वहाँ के नरेशों को माननीय था। उन दिनों इटावा और भरतपुर की राज्य सीमा भी मिल रही थीं। "सूदन" कवि ने कहा है—*

"इन्द्र इटायें सहर अग्नि गोपाचल दुग्गहि,
दच्छिन पुरी कल्यान नैरितहिं नीमरान माहि"।
वरुन हराने सीम मरुत दिस गढ़मुकतेसुर,
उत्तर दिशि गढ़—राम ईस सहपऊ परै घर ॥
"इतनीक भूमि वसु-देव-सुत वदनासिंह भूपहिं दई,
तुरकान तेज परिहरि सकल आन पीत पट की भई ॥"

शिष्टाचार और मित्र मण्डल※

महाकवि देव की अक्षुण्य-कीर्ति समस्त उत्तर भारत और अन्तर्वेद में फैल गई, उन्हें महाकवि और आचार्य माना जाने

---

* सुजान चरित्र व्रजवर्णन पृष्ठ २३५-२३६।

※ कविदेवजी का शिष्टाचार और मित्र-मण्डल के प्रति इतना उदात्त-कर्त्तव्य-भाव था कि वह उसे पूर्णतया निभाते थे। जब महाराज जवाहर-सिंह ने दिल्ली की लूट की और विजय प्राप्त की तो आपने अभिनंदनीय वाक्यों में निम्न लिखित कवित्त उनके यश और प्रताप सूचक लिखकर भिजवाया परन्तु यहाँ भी जवाहरसिंहजी शान्ति पूर्वक न बैठे थे इसलिये

लगा। कवि देव के यों तो अनेक कवि-गुणी जन और प्रेमी मित्र थे परन्तु इनमें विशेषकर उल्लेखनीय नाम परम भागवत महन्त श्री मानदासजी महाराज का है। यह महाराज 'वटेश्वर' के रहने वाले थे और इन्हीं के कहने से कवि देवजी ने अनेक स्तोत्र ग्रन्थों की रचनायें की थीं। "रघुनाथ लहरी" में तो महाकवि ने स्वयं मानदासजी का नामोल्लेख किया है। 'शिव पंचासिका' वटेश्वरनाथ महादेवजीके प्रसन्नार्थ बनाई थी। कविता हृदय-ग्राहिणी और भक्ति-रस-पूर्ण है।

कवि देव की समाधि-दशा

यतः राजा उद्योतसिंहजी के यहाँ से चल कर महाकवि देवजी 'पुरावली' चले आये थे और यहाँ बड़े आमोद-प्रमोद

कुछ संतोष जनक उत्तर कदाचित् न मिला था अन्यथा वह भरतपुर-दरबार-कवि अवश्य होकर रहते।

प्राची में लगी सो कांची राखिगो वज़ीर अली,
पट्टन में टीपू छुरि एक वार छरती के।
दच्छिन दहल पेशवान के महल लागी,
डिगे दिगपाल भूप कम्पे सिग धरती के॥
सोई आग लागी "देव" दिल्लीपुर देश बीच,
सूवा, उमराव, सबै खोगिरि की भरती के।
तेई तेग धारन सों गोला बौछारन सों,
बरती तें बुझाई रे सुजान चक्रवरती के॥

से रहते थे। परन्तु सहसा रुग्न हो जाने के कारण शरीर ने साथ न दिया। अवस्था भी पूरी हो चुकी थी। इन्हें दलीपनगर की 'गढ़ी' में जो जमुना के तट पर है और जल वायु की दृष्टि से उत्तम स्थान है, राव छत्रसाल जी ने भेज दिया। कहा जाता है कि यहाँ आकर वह पंचत्व में मिलते हुए अपनी अमर-कीर्ति तथा कृति "वृत्त-मंजरी" छोड़ गये।

कृति—काल*

महाकवि देव कृत "भाव विलास" का जन्म विक्रम सं० १७४६ में हुआ था वस्तुतः इससे पूर्व की कोई कृति उपलब्ध न होने के कारण ही इसी कृति को उनकी सर्व प्रधान रचना का गौरव प्राप्त हुआ है। उनकी द्वितीय कृति 'शृंगार विलासिनी' नामक पुस्तिका विक्रम सं० १७५७ में बनी थी। यह संस्कृत वाङ्-मय उच्च कोटि की भूरि-भूरि प्रशंसा करने योग्य रचना, संस्कृत में होते हुए भी दोहा, छप्पय (पट पदी) कवित्व आदि छन्दों में की गई है, जो इन्हीं के मस्तिष्क की अनूठी सूझ अथवा इन्ही के प्रतिभा-विकास-क्रम का अक्षुण्य सर्व प्रथम प्रयास और आविष्कार है। इस प्रकार की कृति-क्रम अद्यावधि साहित्य संसार में नहीं है।

---

*यहाँ पर क्रमशः उन्हीं कृतियों का वर्णन किया गया है कि जिन पर रचना काल दिया हुआ है। शेष की एक भिन्न सारिणी देदी गई है।

स्वर भूत स्वर भूमि मिते वत्सरे यदाऽयं।
दिल्लीपति रव रंग साहि रजयत्सदुपायं॥
दक्षिण दिशि च तदैव कुंकुण नामनि देशे।
कृष्णा वेणी नाम नदी संगमप्रदेशे॥
श्रावणे वहुल नवमी तिथौ, रेवानौ रेवती धृति युते।
कवि देवदत्त उदितेर वा, वगमापय दहति स्तुते॥१११*

(छप्पय)

"रस विलास" नामक तृतीय कृति का जन्म विक्रम सं० १७८३ है। चौथी 'सुजान विनोद' नामक रचना का समय विक्रम सं० १८०७ है। पाँचवीं शुभ कृति परम भागवत श्री मानदासजी की प्रेरणा से 'रघुनाथ लहरी' नामक विक्रम सं० १८२४ में उत्पन्न हुई थी। जैसा निम्न लिखित प्रमाण से प्रमाणित होगा:—

---

* ज्योतिष कल्पतरु के सम्पादक श्री पं० मदनलालजी ने सूर्य सिद्धान्तानुसार जैसा कवि देवजी ने अपनी रचना का समय दिया है उसका शोधन इस प्रकार करके दिया और यह रचना-काल सर्वथा शुद्ध बतलाया।

"सं० १७५७ शक १६२२ श्रावण कृष्णा ६ वीं रविवार को रेवती-नक्षत्र और धृतियोग था।"

प्रातः स्पष्ट—सूर्य—२ राशि २८ अंश १३ कला और १५ विकला

चन्द्र—शून्य राशि ७ अंश २४ कला और ५५ विकला

उपरोक्त गणित से यह तीनों बातें ठीक-ठीक आ जाती हैं।

वेद द्वै गजेन्द्रो श्री विक्रम गत्वत्सरे।
कार्तिके शुक्ल पक्षे च पंचम्यां गुरु वासरे॥
लहरी रघुनाथस्य देवदत्तेन धीमता।
प्रारब्ध शिव तिथ्यां च शनौ पूर्णं कृता ततः॥२८॥

छठे 'वैराग्य शतक' का प्रादुर्भाव विक्रम सं० १८२६ में हुआ और 'शक्ति विलास' नामक सातवीं कृति ने विक्रम सं० १८२७ में साहित्य भण्डार की पूर्ति के लिये जन्म लिया। आठवीं ललित-कृति का नाम "वखत* विलास" है, जिसने विक्रम सं० १८३१ में जन्म लिया था। नवमीं कृति "वखत विनोद" विक्रम सं० १८३५ में संसार में आई जैसा महा कवि देवजी ने स्वयं लिखा है—

"सम्वत शर गुन वसु रजनीस
मास असाढ़ विसद दल तिथि, रतिपति को कुज दिन ईस।
सिद्ध योग यह जानि देव कवि, सुमिरि सु विद्याधीस,
बढ़त विनोद अरंभ कीन, दई आज्ञा वखत महीस॥"

---

* मिश्रबन्धुओं ने 'वखत विलास' भोगीलाल कवि का बनाया लिखा है जिन्हें कवि-देव-वंश शाखा में लिखा है। इस 'वखत विलास' पर सं० १८४७ है। परन्तु मेरे संग्रह में सं० १८३१ वि० का कवि देवजी के नाम से बना 'वखत विलास' विद्यमान है। नहीं कह सकते कि सं० ४७ वाला ठीक है या सं० ३१ वाला। प्राचीन सम्वत् ३१ का ही हो सकता है। भोगीलाल कवि हों यह दूसरी बात है और उनके द्वारा 'वखत विलास' का बनना और बात है।

दशम रचना श्री वखतसिंह नरेश के पश्चात् श्री माधवसिंहजी के शासन पौष कृष्णा अष्टमी शुक्रवार सं० १८३६ वि० में 'माधव गीत' नाम से की गई थी जिसका यह प्रमाण है—

\+ + + +

देव भूप माधव स्वामी तहँ कीन्हें वहुत उपाइ।
छूटि न सके प्रेम रस वासि हरि छूटे हाहा खाइ॥

\+ + + +

"माधव नृपति विजय प्रदसी हरि देवदत्त चितचोर"

\+ + + +

इसके उपरान्त ग्यारहवीं रचना विक्रम सं० १८३६ माघ शुक्ला एकादशी बुधवार को 'श्री लक्ष्मीनृसिंह पंचासिका' नामक स्तोत्र ग्रन्थ के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुई। जैसा महा कवि देवजी लिखते हैं—

देवदत्त कवि रचित्वा मित्थं लक्ष्मीनृसिंह पंचासिकेयं,
श्रुणुयाद्यप्रपठे द्वा दृढ़ तर भक्ति लभेतहरि चरणे॥

\+ + + +

कवि देवजी की तेरहवीं कृति ने विक्रम सं० १८४२ कार्तिक शुक्ला ५ मीं को "वरुणाष्टक स्तोत्र" नाम से जन्म लिया। उसका फल कविजी ने लिखा है कि इस स्तोत्र के पढ़ने से कुओं का जल अमृत के समान मीठा हो जाता है। आप लिखते हैं कि:—

"वरुणाष्टक मेतद्धि देवदत्त विनिर्मितः ।
यः पठेत्स नरः कूपे सुधोपम जलं भवेत् ॥"

\+ + + +

तदुपरान्त उन्होंने पाँचही महीने पीछे अर्थात् विक्रम सं० १८४२ फाल्गुन शुक्ला ५ मी रविवार के दिन "शुक्राष्टक" नामक कृति को जन्म विभूति प्रदान की। इस अष्टक की भी बड़ी महिमा है कि यदि शुक्र दोष से डरे हुये इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करें तो उनकी मनोभिलाषा पूर्ण हो जावेगी। यथाः—

शुक्राष्टक मिदं पुण्यं देवदत्तेन भाषितं।
शुक्रास्त दोष भीतोयः पठेत्भक्त्या कृतांजलिः ॥
तस्य कार्यं भवेत्सिद्धि मस्तद्दोषं न चाप्नुयात् ।
सिद्धकार्यो धरण्यं समरे देवाहम मनोरथैः ॥

\+ + + +

पन्द्रहवीं कृति की सुभग संज्ञा "वृत्त मंजरी" है यह विक्रम सं० १८४६ अथवा कवि देवजी के जीवन की अन्तिम जवनिका रूप प्रतीत होती है। इसके अनन्तर जो अन्य कृतियाँ प्राप्त हुई हैं, उन पर कृति-सम्वत् नहीं है। इस लिये अधिक सम्भव है कि वे इन सब कृतियों में से किसी से आगे और किसी से पीछे आविर्भाव में आई हों, परन्तु रचना की दृष्टि से वह ऐसी है कि जैसे किसी नदी का उत्तुंग प्रवाह जो प्राविट् ऋतु में होता है, न रह कर तल

वाहिनी मन्थर गति से प्रवाहित होने वाली कुल्यादि के समान धारावाह हों। अतः यह कृतियाँ उनके जरावस्था में ही सम्भवतः बनी थीं। जिनकी सारिणी यह है। कुछ उनमें इसके विपरीत उत्तम "रचना" भी हैं।

(१) मनोभिनन्दनी, (२) महावीर मल्लारि देवाष्टक, (३) कालिका स्तोत्र, (४) शिव पंचासिका, (५) वखतशतक, (६) साम्ब शिवाष्टक, (७) नृसिंह चरित्र (१०) प्रज्ञान शतक, (११) लक्ष्मी नृसिंहाष्टक।

महा कवि देवजी की अमर कृतियाँ कि जिनका वर्णन किया जा चुका है उनके आशु और प्रौढ़तर कवि होने की साक्षी में सुरक्षित हैं।

कृति-समर्पण

महा कवि देवजी ने अष्टयाम* रच कर सर्व पूर्व औरंगजेब बादशाह के मँझले पुत्र शाहज़ादा आज़म को सुनाया था और उनकी बड़ी प्रतिष्ठा और प्रशंसा हुई थी जैसा प्रमाण से विदित होगा—

---

* आज़मशाह को केवल अष्टयाम सुनाया गया था न कि भावविलास भी। मिश्रबन्धुओं ने दोनों का सुनाया जाना लिखा है यह धारणा दोहे के अर्थ के विपरीत है।

"दिल्लीपाति नौरंग के, आजम साहि सपूत ।
सुन्यो सराह्यो ग्रन्थ यह, अष्टयाम संयूत ॥"

यह आज़मशाह महा कवि देव का बड़ा आदर करता था और काव्य मर्मज्ञ भी था। वर्त्तमान संस्करण जो महा कवि विहारीलाल कृत "सतसई" का मिलता है वह "आज़मशाही क्रम" के नाम से प्रसिद्ध है इससे उसके रसिक होने का भी भेद खुलता है फिर "अष्टयाम" जैसी महाकवि देव की कृति को सुन कर उसने "सराहा" हो तो इसमें अत्युक्ति ही क्या है ? परन्तु आजम को "अष्टयाम" का समर्पण किया जाना प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार "भाव विलास" भी किसी को समर्पण नहीं किया गया ऐसा मानना पड़ेगा। "शृंगार विलासिनी" नामक नायिका भेद का ग्रन्थ जो अब प्रकाशित किया जा रहा है यह भी किसी को कवि देवजी ने समर्पण नहीं किया परन्तु अन्तिम छप्पय के देखने से प्रमाणित होता है यह उसकी कृति अवश्य दक्षिण देश में हुई थी। यह पूर्व लिखा जा चुका है कि कवि देवजी का शाहजादा आज़मशाह के साथ अधिक प्रेम था यह कृति उन्होंने दक्षिण की चढ़ाई * के समय शाहज़ादे

---

* इस चढ़ाई का सूत्र-क्रम इस प्रकार हुआ कि सन् १६८१ ई० में औरङ्ग़ज़ेब की इच्छा दक्षिण देश को विजय करने के लिये हुई। परन्तु उसका पुत्र अकबर उन दिनों उससे लड़ने का प्रबन्ध कर रहा था इस चिन्ता के साथ उसे यह भी ध्यान था कि उसके दक्षिण की ओर न जाने के मर-

आज़म के साथ उक्त देश में जाकर ही की थी। जो सम्वत् इस ग्रन्थ की समाप्ति का है वही औरंगज़ेब बादशाह की मृत्यु का

छूटे भी न दवाये जा सकेंगे। इस निमित्त उसने अजमेर से नोम्बर सन् १६८१ में कूँच करते हुये दिसम्बर सन् १६८३ में अहमदनगर में डेरा जा डाला। सन् १०९५ हिजरी वि० सं० १७४१ ई० सन् १६८४ में आपाढ़ वदी छठ अर्थात् २४ मई को मुअज़्ज़मशाह (शाहआलम बहादुर) ने सूचना दी कि कोंकण पर विजय हो चुकी है। इस पर उसे बड़ी इनाम दी गई और सन् १७८५ में बहादुरगढ़ के किलेदार के पास महाराज संभाजी की स्त्री और उनके बच्चे भी पहुँचाये गये। इन दिनों औरङ्गज़ेब ने समस्त कार्य मुअज़्ज़म के सुपुर्द कर रक्खा था। सम्वत् १७४२ चैत्र सुदी को उसने बीजापुर का घेरा डाला। तदुपरान्त आपाढ़ सुदी आठें ता० २१ जून को वह हैदराबाद चला गया। फिर सं० १७४५ ई० में सावन सुदी चौथ ता० १० जुलाई को उसने रायचूर का दुर्ग ले लिया परन्तु औरङ्गज़ेब का माशा तोला मिजाज पासंग के पलड़े की तरह मुअ-ज़्ज़म से बिगड़ बैठा, उसने मुअज़्ज़िमशाह को क़ैद करने की आज्ञा दी और उसका काम 'आज़म' के सुपुर्द कर दिया। परन्तु जब उससे काम चलता न देखा तब औरङ्गज़ेब ने स्वयं सं० १७५२ में "भीमड़ा" नदी के पास आकर डेरा डाला। इस समय राजा राजाराम जो पहिले से ही इससे बिगड़ा हुआ था बहुत जोर लगा रहा था। औरङ्गज़ेब की सेना पुत्र विद्रोह के कारण बड़ी निर्बल हो चुकी थी बारम्बार आक्रमण करती हुई भी किसी किले को न ले सकती थी प्रत्युत जीते हुये भी लौटे जाते थे।

है। जैसे शाहजहाँ के दरबार में 'सुन्दर विलास' के रचयिता श्री सुन्दर कविजी का आदर था उसी प्रकार औरंगज़ेब बादशाह के प्यारे पुत्र शाहज़ादा आज़म का इनसे घनिष्ट सम्बन्ध और मान था। औरंगज़ेब के दोनों पुत्र आज़म व मुअज़्ज़िम हिन्दी कविता-प्रेमी और कवियों के आश्रयदाता थे परन्तु दोनों भाइयों में बड़ी अनबन थी इसलिये यह आज़म के (जिसे औरंगज़ेब अन्तरंग भाव से राज्य शासन का उत्तराधिकारी बनाना चाहता था) साथ रहे कि कदाचित कभी दरबार-कवि बनने का अवसर आ जावे। परन्तु औरंगज़ेबी चौसर का खेलना कोई मुख-ग्रास न था। राज्य का ही रंग बदल गया और यह उसका साथ छोड़ कर इतस्ततः आश्रय की खोज में रहे और अपनी अमर कृति के

ऐसी हीनावस्था में सं० १७५६ में भी उसने हिम्मत न हारी और नसरतगढ़ तथा चिनजी के किले ले ही लिये और आषाढ़ सुदी सं० १७५७ में "ब्रह्मपुरी" जिसका नाम इसने बदल कर इसलामपुर रक्खा वहाँ जाकर डेरा जा डाला। यतः राजारामजी का जोर अब और भी बढ़ गया था इस लिये उसे फिर सं० १७५७ में वैशाख में सितारे की ओर जाना पड़ा। यह मरहठों की राजधानी थी और बदल कर सितारे का नाम "आज़म तारा" रक्खा। यहाँ शिवाजी महाराज के पूर्वज रहा करते थे और वह ही महाराष्ट्रवीर इस प्रान्त को "कोंकण" कहा करते थे। अतः यह कोंकण प्रान्त महाराष्ट्रों की जान थी। भाव यह कि इस चढ़ाई में महाकवि देवजी "आज़म" के साथ थे।

साथ अनेक नाम नियोजित कर कइयों को अमर कर दिया कि जिनके नाम आज इस काव्य-काया में आदर से अंकित हैं। "जिन खोजा तिन पाइयाँ" की कहावत के अनुसार राजा भोगीलालजी से इनके ग्रह मिल गये और उन्हीं के आश्रित रह कर इन्होंने "रस विलास" की नींव डाली। उक्त राजा साहब की इन्होंने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा भी की है। यथा:—

"भूलि गयो भोज, बलि, विक्रम बिसरि गयो,
जाके आगे और तन दौरत न दींदे हैं;
राजा, राय, राने, उमराने उनमाने,
उन माने निज गुन के गरब गिरवींदे हैं।
सुबस बजाज जाके सौदागर सुकवि,
चलेई आवें दसहू दिशान के उनींदे हैं;
भोगीलाल भूप लखि पाखर लिवैया,
जिन लाखन खरचि रचि आखर खरींदे हैं॥"

महाकवि देवजी ने सुजान * विनोद की रचना इन्द्रप्रस्थ के किसी कायस्थ कुल अवतंश श्री पातीरामजी के पुत्र श्री राय

---

* देहली प्रान्त में ई० आई० आर० का "पातपुर" स्टेशन और कूँचा पातीराम (देहली) में इन्हीं की स्मृति में बसे प्रतीत होते हैं।

टिप्पणी—

'हिन्दी नवरत्न' के रचयिता ने लिखा है कि "इसके सुजान-विनोद के नाम से भ्रम होता है कि यह (पुस्तक) सुजान नामक किसी

सुजानमनि के लिये की थी। कवि देवजी ने अपने आश्रयदाता का यह परिचय दिया है—

दो०—रघु ज्यों मनु के वंश में, नृपति **निरोत्तम** दास।
तासुत दशरथ ज्यों किया, **पातीराम** विलास ॥९॥
पातीराम विलास निधि, प्रकट पुन्य को धाम।
तेहि सुत **राय सुजान** जू, ज्यों दशरथ के राम ॥१०॥
राय सुजान सुजान मनि, धनि धन धर्म विलास।
इन्द्र सकल कायस्थ कुल, इन्दरप्रस्थ निवास ॥११॥

क०—कुंजर विराजैं द्वार गुंजरंत भीर तीखे,
तरल तुरंग रंग रंग सुभ थान के।
दंपति सुफल वेलि संपात्ति लह लहाति,
वहुल विलास ज्यों महल मघवान के।
कहालौं वखानैं 'देव' सगुन उदारता के,
भूपति से भिक्षुक निवाजें दिन दान के।

व्यक्ति के वास्ते वनाया गया होगा; परन्तु ग्रन्थ में किसी सुजान का नाम तक नहीं आया अतः जान पड़ता है कि यहाँ सुजान से विज्ञ मनुष्य का तात्पर्य है" परन्तु अब उपरोक्त प्रमाण से 'हिन्दी नवरत्न' का लेख उतना मूल्यवान नहीं रहता कि जब तक यह प्रतीक प्राप्त न थी—अथवा उनकी प्रति ही अपूर्ण हो।

पुण्य के प्रभाव लखि लाखि श्री लुभाइ ऐसे,
साहिब सुभाइ राइ साहिब सुजान के ॥१२॥
पातीराम नन्दन प्रतापी संकसापति की,
कीरति कहानी जोति जागती जलप की।
सत्रुन को सोखे परिपोखे परिवार तोखे,
देव गुन पितरानि राखै न कलप की।
दान झरि झांपि चित चंपत कुबेर घन,
संपति अधीन कीन्हीं दासी ज्यों तलप की।
श्रीपति के अंक सिय सोवे निसंक सके,
मान कलप तरु सोभा संकलप की ॥१३॥

दो०—भूप रूप भूपर किये, तुच्छ भिच्छुकनि गोत।
नृप सुजान संकलप सों, अल्प कल्प तरु होत ॥१४॥
परत सुजान सुजान की, कृपा देव कवि हर्पि।
कियो सुजान विनोद कों, रचन वचन-वसु वर्पि ॥१५॥

महा कवि देव की "रघुनाथ लहरी" उनके आशु कवि होने का प्रखर प्रमाण है उन्होंने स्वयं लिखा है कि—

\+ \+ \+ \+

दश वासर मध्ये स रचिते यं प्रयासतः।
बुध विचार्यं त्वेतां, स्वी कुर्वन्त्वति मुद्धितः ॥

\+ \+ \+ \+

रचना क्या है मानों श्री रघुनाथजी का पावन चरित्र वर्णन कर के कवि ने अपनी लेखनी को निकलंकिनी बनाया है, और भजन भाजन बना है।

"वैराग्य विलास" की रचना साहित्य मर्मज्ञों के चित्त को व्यामोहित करने वाली है जो "प्रेम दर्शन पचीसी" नामक अंग से व्यक्त होती है।

कवित्त—कुल के कुलीन कोई, मो सो अ-कुलीन हू जौ,
जो ना कुलीन अकुलाइ क्यों हूं सोर सों।
गरुये से गुरुजन हरुये न हूजो नेकु,
अनाहितु करि मोसे हरुये की ओर सों॥
कहतु निसंक सिर धरौं मैं कलंक अरु,
मैले मति हूजो मिलि मैल मोसे घोर सों।
वरन उजेरो तजो चरन को चेरो भयो,
मेरो मनु लाग्यो भिया काहू कारे चोर सों॥

\+ \+ \+ \+

"शक्ति विलास" संस्कृत वाङ्मय अनुपम काव्य है जिससे महा कवि देव का पाण्डित्य टपकता है। उन्होंने इस कृति का रचना काल इस प्रकार स्फुटित किया है—

पूर्वं सप्त त्रिलोचनेभ रजनीनाथोन्मिते हायने।
पौषे मासि सिते दले गिरिसुता तिथ्या गुरोर्वासरे॥

श्री मद्दीक्षित देवदत्त कृतिना, सम्यक्कृता पूर्णता।
भागात्सर्व सुखद् प्रविमलः शक्ते विलासः शुभः॥

"इति श्री मद्देवदत्त विरचित शक्ति विलासः सम्पूर्णः।"

गोहद के राना के राज्यान्तर्गत "छत्रपुर" नगर का ललित छन्दों में वर्णन कर महा कवि देव ने 'वखत विलास' नामक ग्रन्थ की रचना समाप्त की है। उन्होंने "राना वहादुर" के दरबार का अति रोचक वर्णन करते हुए निम्न लिखित पद्यों में आशीर्वाद भी दिया है—

दो०—*गोहद के मधि छत्रपुर, चारिहु वर्न समेत।*
सकल संपदा सहित नित, कमला लय मनिकेत॥१६॥
देवदत्त रचि कावि शुभ, अब बरनिये वज़ार।
धनद समान धनी जहाँ, विलसत वनिज हज़ार॥२०॥

\+ + + +

क०—*दरबार बैठत महिन्द वखतेसजू को,*
गब्बर गलीमन के पुर छहरात हैं।
संकनि अतंकिन पलाय जात बैरी गिरि,
कन्दरान हू के तउ संकि हहरात हैं।
लै लै कर भेटें कई अरि आय पांय परें,
आवैं जे न पाइन ते कंप थहरात हैं।
भागि भागी जात वन परे देश तिनके,
नरेस वखतेस के नगारे घहरात हैं॥१०७॥

\+ + + +

जब लग्गि भूमि अरु आसमान, जब लग्गि भान हिमवान लसौ,
जब लग्गि वारि अंबर प्रचार, जब लग्गि वारि निधि वारि बसौ,
जब लग्गि देव अरु देवपाल, जब लग्गि शेष भूगोल धरौ,
तब लग्गि देस देसानि सुवेस, निज देश राज वखतेस करौ ॥१०८॥

\+ + + +

चन्द्र गुन वारन मयंक मिति वीती सम,
विक्रम दिनेसतें सुमास इष जँच्यो है।
विपद सुपच्छ तिथि पांचैं सासिवार,
सुना सीर को नखत नभ जोतिन खँच्यो है॥
सुभ दिन ऐसो पाइ मन हुलास वहु छंद नीको,
अतुल प्रचन्ध कवि देव इमि सँच्यो है ?
आस करि वखत नरेस की सुवास ग्रन्थ,
'वखत विलास' देवदत्त कवि रच्यो है ॥१०९॥

\+ + + +

"इति महोक्षित देवदत्त विरचितो वखत विलासाख्यो ग्रन्थ समाप्तः।"

\+ + + +

"वखत विनोद" की रचना "वखत विलास" के पश्चात् की गई विदित होती है। यह कवि देव का 'विनोद' राणा साहब गोहद श्री वखतसिंह जी के लिये ही था। इसमें भिन्न राग, रागिनियों में भक्त-चित्ताकर्षक वर्णन है।

"पुरट भूमि मानि जटित मुक्त रुचि, विघटित ध्यावत हरत पीर—टेक

ध्रुव-पद—सुन्दर रूप वहाति रवि तनया,

नीर गमन दृग सुखद धीर—ऐ

देवदत्त प्रभु श्याम वखत नृप,

धाम धाम, वलराम वीर—ऐ

रूप कलानिधि वहुगुन वारिधि,

राजत तहँ घन दुति शरीर—ऐ

"इति श्री मत्पञ्चाध्यायिकायां श्रीकृष्ण-विलासे श्री मद् वखतसिंह भूप प्रमोदाय श्रीमद्दीक्षित देवदत्त विरचिते गोपी-विरह वर्णनो नाम द्वितीयो विलासः"

"वखत विनोद" की भाँति "माधव गीत" भी अपने रंग ढंग का विभिन्न राग-रागिनियों में कवि देव की अनूठी कृति का दर्शन है। यह गोहद के राना माधवसिंहजी के विनोदार्थ रचा गया प्रतीत होता है।

"अद्भुत सुख उपजत सब तन में, कुच उर गड़त कठोर।
जय जय रसिक लाल धुनि सब वन पुनि हिय हरस करोर।
माधव नृपति विजय भद 'सी हरि' देवदत्त चितचोर॥"

महाकवि देवजी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में लखुना ज़िला इटावा की स्वर्गीया रानी साहिबा श्री रानी किशोरी के पूर्वज श्री स्वकुशराय के पुत्र राव छत्रसालजी के आश्रित रहे थे।

यह राव छत्रसाल* पुरावली से दलीपनगर, कवि देवजी की मृत्यु के उपरान्त निवास करने लगे थे जो कतिपय नैतिक परिवर्तनों के कारण करना पड़ा था। अतः कवि देवजी ने 'पुरावली' में रह कर "वृत्त मंजरी" लिखी थी। जिसकी उन्हीं के शब्दों में पुष्टि होती है।

"वृत्त मंजरी" अथवा "वाग विलास" छन्द-शास्त्र का बड़ा ही विशद और अनुपम ग्रन्थ, लगभग २०० पृष्ठों में समाप्त होने वाला एक सराहनीय रचना का आलोक है। महाकवि देवजी ग्रन्थ-विषय प्रवेश से पूर्व इस प्रकार लिखते हैं।

क०—"जाहर जगत गंग जमुन मँझार नीकौ,
नगरि सिरोमनि नगर हैं 'पुरावली'।
सोहे सुक्खि थल जाको सोहे सब भाँति,
जाको चन्द्रमा सी ऊजरी है सुजस गुनावली।
नाम 'छत्रसाल' उर सालै सत्रुन के,
दौरि जाकी लखि भागैं अरिय गति उतावली।
देवदत्त प्रथम ही ग्रन्थ के अरंभता की,
छन्द कै प्रबन्ध भनै वंश विरुदावली॥

\+ \+ \+ \+

---

* "वृत्त-मंजरी" की भूमिका में इसका पूर्ण दिग्दर्शन कराया गया है। पाठक वहाँ देखें।

"पुरट भूमि मनि जटित मुक्त रुचि, विघटित ध्यावत हरत पीर—टेक

ध्रुव-पद—सुन्दर रूप वहाति रवि तनया,
नीर गमन दृग सुखद धीर—ऐ

देवदत्त प्रभु श्याम वखत नृप,
धाम धाम, बलराम वीर—ऐ

रूप कलानिधि वहुगुन वारिधि,
राजत तहँ घन दुति शरीर—ऐ

"इति श्री मत्पञ्चाध्यायिकायां श्रीकृष्ण-विलासे श्री मद्र् यखतसिंह भूप प्रमोदाय श्रीमद्दीक्षित देवदत्त विरचिते गोपी-विरह वर्णनो नाम द्वितीयो विलासः"

"वखत विनोद" की भाँति "माधव गीत" भी अपने रंग ढंग का विभिन्न राग-रागिनियों में कवि देव की अनूठी कृति का दर्शन है। यह गोहद के राना माधवसिंहजी के विनोदार्थ रचा गया प्रतीत होता है।

"अद्भुत सुख उपजत सब तन में, कुच उर गड़त कठोर।
जय जय रसिक लाल धुनि सब वन पुनि हिय हरस करोर।
माधव नृपति विजय प्रद 'सी हरि' देवदत्त चितचोर ॥"

महाकवि देवजी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में लखुना जिला इटावा की स्वर्गीया रानी साहिबा श्री रानी किशोरी के पूर्वज श्री मर्दनराय के पुत्र राव कुशलालजी के आश्रित रहे थे।

दो०—पंडित कवि सनमान सों, करत राउ छत्रसाल ।
और राव खग वृन्द माधि, मानहु राज मराल ॥ १ ॥
ज्ञाता, दाता, अधिक जन, त्राता गुन भरपूर ।
जाके मुख राजत सदा, सिरदारी को नूर ॥ २ ॥
निज भुजबल पुरखानि की, भोगत जो भुवि सर्व ।
करनी वाकी जासु लखि, तजत बड़े नृप गर्व ॥ ३ ॥
ऐसे समरथ गुन जलधि, छत्रसाल इक रोज ।
आज्ञा शुभि कवि देव कों, दई आप मन मोज ॥ ४ ॥
देव ! कहो तुटि ग्रन्थ अब, छन्दोमय सुखदाइ ।
छन्द रूप अरु नाम सब, जामें जान्यो जाइ ॥ ५ ॥
जब निदेश ऐसे भयो, तब मन बढ़्यो हुलास ।
छन्दो मय सुभ ग्रन्थ अब, कीजतु वाक-विलास ॥ ६ ॥
गुरु गनपति फनपति सुमिरि, सुमिरि सारदा माइ ।
वृत्त मंजरी रचहुँ मैं, सरव अङ्ग सुख दाइ ॥ ७ ॥

\+ \+ \+ \+

"सम्वत् १८२६ आश्विन विजया दशमी वृत्तमंजरी पूर्ण कृता ।"

\+ \+ \+ \+

कृति-विन्यास

© शिवसिंह सरोजकार ने, महाकवि देव कृत, (१) रसानन्द लहरी (२) प्रेम दीपिका (३) सुमिल विनोद (४)

© शिवसिंह सरोज पृष्ठ सं० ४३४ ।

राधिका विलास (५) काव्य रसायन (६) भाव विलास (७) प्रेम तरंग (८) देवमाया प्रपंच नाटक और अष्टयाम नामक काव्यों का परिचय दिया है।

(ब) स्वर्गीय श्री बा० हरिश्चन्द्रजी भारतेन्दु ने "सुन्दरी-सिन्दूर" नामक संग्रह-ग्रन्थ छपवाया था जिसमें देव कवि की कतिपय रचनाओं का मनोहर संग्रह, उनके ग्रन्थों से किया गया है। जिसे स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता।

(स) *श्रद्धेय मिश्र बन्धुओं ने (१) भवानी विलास (२) कुशल विलास (३) अष्टयाम (४) सुख सागर तरंग (५) सुजान चरित्र (६) रागरत्नाकर (७) प्रेम चन्द्रिका और जाति विलास कवि देव की कृतियाँ बतलाई हैं।

(द) स्वर्गीय श्री जुगलकिशोरजी † मिश्र ने (१) प्रेम तरंग (२) देव चरित्र (३) देवमाया प्रपंच नाटक (४) वृत्त-विलास (५) पावस विलास (६) नीति शतक (७) वैराग्य शतक भी ग्रन्थ देखे हैं परन्तु वह प्रतियाँ संग्रह नहीं कर सके।

(ह) जयपुर राज्य के श्री गोविन्दशरण ‡ सरदार तथा बारहट श्री करणीदानजी ने भावविलास तथा देवशतक छपवाया

---

* मिश्रबन्धु विनोद पृष्ठ सं० ५६६–६७।

† हिन्दी नवरत्न पृष्ठ सं० २६६–६७।

‡ भाव विलास भूमिका पृष्ठ १। जयपुर राज्यकीय पुस्तकालय।

दो०—पंडित कवि सनमान सों, करत राउ छत्रसाल ।
और राव खग वृन्द मधि, मानहु राज मराल ॥ १ ॥
ज्ञाता, दाता, अधिक जन, त्राता गुन भरपूर ।
जाके मुख राजत सदा, सिरदारी को नूर ॥ २ ॥
निज भुजबल पुरखानि की, भोगत जो भुवि सर्व ।
करनी बाकी जासु लखि, तजत बड़े नृप गर्व ॥ ३ ॥
ऐसे समरथ गुन जलधि, छत्रसाल इक रोज ।
आज्ञा शुभि कवि देव कों, दई आप मन मोज ॥ ४ ॥
देव ! कहो त्रुटि ग्रन्थ अब, छन्दोमय सुखदाइ ।
छन्द रूप अरु नाम सब, जामें जान्यो जाइ ॥ ५ ॥
जब निदेश ऐसे भयो, तब मन बढ़्यो हुलास ।
छन्दो मय शुभ ग्रन्थ अब, कीजतु वाक-विलास ॥ ६ ॥
गुरु गनपति फनपती सुमिरि, सुमिरि सारदा माइ ।
वृत्त मंजरी रचहूँ मैं, सरव अङ्ग सुख दाइ ॥ ७ ॥

\+ \+ \+ \+

"सम्वत् १८२६ आश्विन विजया दशमी वृत्तमंजरी पूर्ण कृता।"

\+ \+ \+ \+

कृति-विन्यास

* शिवसिंह सरोजकार ने, महाकवि देव कृत, (१) रसानन्द लहरी (२) प्रेम दीपिका (३) सुमिल विनोद (४)

---

* शिवसिंह सरोज पृष्ठ सं० ४२४ ।

देव कृति-आदर्श

भाव विलास

भाषा-काव्य में भाव विलास के जोड़ का दूसरा आदरणीय काव्य सिवाय कतिपय काव्यों को छोड़कर केवल यही है।

यथा—साजि सिंगारनु सेज चढ़ी,
तब ही तें सखी सब सुद्धि भुलानी।
कंचुकी के बँद टूटत जाने न,
नीवी की डोर न छूटति जानी॥
ऐसी विमोहित ह्वैगई है जनु,
जानति राति के मैं रतिमानी।
साजी कबै रसना रसकेलि में,
बाजी कबै बिछियान की बानी॥

*२—*आगे धरि अधर पयोधर सघर जानि,*
जोरावर जंघानि सघन लरे लाचिके।

तत्सम भाव-विलास द्योतक।

* रति-रन विषै जे रहे हैं पति सन्मुख,
तिन्हैं बकसीस बकसी हौं विहँसिकैं।
कानन कों कुण्डल उरोजन को चन्द्रहार,
कटि कों सु किंकनी रही है कटि लसिकैं॥

था जिसमें जगद्दर्शन, आत्म दर्शन, तत्व दर्शन और प्रेम दर्शन पचीसियाँ छपवाई थीं।

(ध) भाव विलास, अष्टयाम, और भवानी विलास स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्मा के भारतजीवन प्रेस काशी में तथा सुख-सागर तरंग स्वर्गीय श्री पं० बालदत्तजी मिश्र * जो मिश्र-बन्धुओं के पिता थे, छपवाया था

(क) स्वर्गीय श्री कन्नोमलजी ‡ एम० ए० ने (१) प्रेम-तरंग (२) भानु विलास (३) रस विलास (४) रसानन्द लहरी (५) श्याम विनोद (६) काव्य रस पिंगल (७) अष्टयाम (८) सुजान विनोद (९) राधिका विलास (१०) देवमाया प्रपंच नामक कृतियों का पता दिया है; परन्तु उपरोक्त ग्रन्थ परिचायिकों ने केवल एक दो ग्रन्थों को छोड़ कर किसी ग्रन्थ की रचना-काल का प्रमाण नहीं दिया कि जिससे क्रमबद्ध रचना का ज्ञान हो जाता; बहुतों ने कृति का बखाना भी नहीं दिया केवल नाम मात्र लिख दिये हैं। इस पक्ष में तो केवल मिश्र-बन्धुओं का ही श्रम श्लाघ्य है।"

* हिन्दी नवरत्न २८३

‡ भारत के पुरातन कवि पृष्ठ सं० ५५।

† कथित सम्भव है कि सं० १९१७ में बनी "रागमाला" इन्हीं [illegible] हो।

देव कृति-आदर्श

भाव विलास

भाषा-काव्य में भाव विलास के जोड़ का दूसरा आदरणीय काव्य सिवाय कतिपय काव्यों को छोड़कर केवल यही है।

यथा—साजि सिंगारनु सेज चढ़ी,
तब ही तें सखी सब सुद्धि भुलानी।
कंचुकी के बँद टूटत जाने न,
नीवी की डोर न छूटति जानी॥
ऐसी विमोहित ह्वैगई है जनु,
जानति राति के मैं रतिमानी।
साजी कवै रसना रसकेलि में,
बाजी कवै बिछियान की बानी॥

२—*आगे धारि अधर पयोधर सधर जानि,
जोरावर जंघनि सघन लरे लाचिके।

तत्सम भाव-विलास द्योतक।

* रति-रन विपै जे रहे हैं पति सन्मुख,
तिन्हें बकसीस बकसी हौं विहँसिकैं।
कानन कों कुण्डल उरोजन को चन्द्रहार,
कटि कों सु किंकनी रही है कटि लसिकैं॥

बार बार देति बकसीस जितवारन कों,

वारानि को बाँधै जे पिछारि डरे बचिकें ॥

उरुनि दुकूल ह्वे उरोजन को फूलमाल,

ओढनि उढाये घने घाइ खाह पचिकें ।

देव कहै आजु यह जीतो है अनंग रिपु,

पिय संग संगर सुरति रंग रचिकें ॥

३—सूधिये बात सुनो समुझो,

अरु सूधी कहो करि सूधो सबै सँगु ।

ऐसी न काहू के चातुरता,

चितयो चितबै कवि देव दियें अँगु ॥

चाहिय बोलें बलाइलों लौं बालम,

हों तुम्हें नीको बतावतु हो ढँगु ।

देव कहे यह जाको सनेहु,

महाउर बीच महाउर को रँगु ॥

४—हरिजू सों हहा हटकोरी भटू जनि,

बात कहे जिय सोचन की ।

'कालिदास' आनन को आदर सों, दीन्हो पान,

नैनन को काजर रह्यो है नैन बसिकै ।

छूटे ऐसे बार पे बढ़े है पीठि पाछे बारे,

बार बार बाँधत हौं बार बार कसिकै ॥

कहि पंकज नैनी बुलाइ कैं मोहिं,
दई सुखमा सुख मोचन की ॥
उनहीं सों उराहिनो देवतु तो,
उमँगी उर रासि सकोचन की ।
वालि वारौं री वीरज वारिज को,
जु वरावर वीर विलोचन की ॥

५—मारग हेरति हौं कव की,
कहो काहे ते आये नहीं अबहूँ हरि ।
आवत हैं किधौं ऐहैं अभै,
कवि देव कै राखे हैं काहू कछू करि ॥
मोहूते न्यारी कै प्यारी गुपाल कें,
हाय विचारिये री चित में धरि ।
जो रमनी रमनीय लगै वसि,
वाके रहे सजनी रजनी भरि ॥

६—नेह सों नीचे निहारि निहोरनि,
नाहीं कै नांहकी ओर चितैवो ।
पीठि दै मोरि मरोरि कै दीठि,
सकोरिकै सौंह सों भौंह चढ़ैवो ॥
प्रीतम सों कवि देव रिसाय कें,
पाइ लगाइ हिये सों लगैवो ।

तेरो री मोहि महा सुख हेतु,
सुधारस हू तें रसीली रिसैबो ॥

६—आजु रिसाइ रही हरि सोहिं,
कितोन सखी पति प्रेम पढ़ावै ।
मोहन को सरि नातो न नेक,
जऊ परि पाय प्रतीत चढ़ावै ॥
पीठि दै बैठि अगेटी सी डीठि दै,
कोयन कोप की ओप बढ़ावै ।
तीर से तानि तिरीछे कटाच्छ,
कमान सी भामिनि भौंहैं चढ़ावै ॥

—मोहन माई भये मथुरापति, देव महा मद सों मद मातो ।
पै अब कूबरी के करि में हरि, यातें कियो हम सों हितु हांतो ॥
गोकुल गांव के गोप गरीब हैं, वासु बराबरि ही को रहांतो ।
बैठि रह्यो मनहू सुन्यो कहुँ, राजानि सों परजानि को नातो ॥

८—दारचों ले रदन सुधा मदन बदन लियो,
भृकुटी मदन धन चाप लेत गात है ।
दृग मृगलीने मृग राज काटि केहरी कन,
कुचनि कनक कुम्भ लेत सकुचात है ॥
कोकिल बचन अंग रंभा जुग जंघा चाहि,
करन प्रवाल चापक रंग जलजात है ।

प्रीतम पुकार लाग्यो प्यारी सुनि सौत कहा,
हहा चितै देखु चोर चोरी करे जातु है॥

६—बाजी हरे रसना रस केलि में,
कोमल कै बिछुआन की बानी।
प्यारी रहीं परजंक निसंक ह्वै,
प्यारे के अंक महासुख सानी॥
ऊँचे पग चापि चढ़ी उतरी,
कहूँ आवत लोगनु जात न जानी।
छोरि छिपाइन खोलि हियो,
कवि देव दूहूँ मिलि के रति मानी॥

उपरोक्त सूक्तियों के अतिरिक्त २६६, २७०, ६, ८, १५, १७, १८, १६, २०, ३०, ३३, ३६, ४३, ५१, ४६, ५७, ६१, ७१, ७३, ७५, ७६, ७७, ८४, ६३, १०५, १०७, १०६, ११२, ११४, १२४, १३०, १३१, १५२, १६१, १७६, १७६, १६२, १६६, १६६, २००, २०५, २११, २१२, २१३, २१४, २४८, २५८, २६०, २६२, २७५, २६०, तथा २६५ कवित्व पढ़ने योग्य हैं। जिनमें मधुर साहित्य भरा है और भावों का उत्तम प्रभाव है।

अष्टयाम

महाकवि देव की द्वितीय रचना है। इस ग्रन्थ में उन्होंने दिन के प्रत्येक पहर घटिकाओं में होने वाले दम्पति-विलास

तेरो री मोहि महा सुख हेतु,
सुधारस हू तें रसीलौ रिसैवो ॥

६—आजु रिसाइ रही हरि सोहिं,
कितोन सखी पति प्रेम पढ़ावै ।
मोहन कों सखि नातो न नेक,
जऊ परि पाय प्रतीत बढ़ावै ॥
पीठि दै वैठि अमेठी सी डीठि दै,
कोयन कोप की ओप बढ़ावै ।
तीर से तानि तिरीछे कटाच्छ,
कमान सी भामिन भौंहैं चढ़ावै ॥

७—मोहन माई भये मथुरापति, देव महा मद सों मद मातो ।
परे अव कूबरी के करि में हरि, यातैं कियो हम सों हितु हांतो ॥
गोकुल गांव के गोप गरीव हैं, वासु बरावरि ही को इहांतो ।
वैठि रहो सपनेहू सुन्यो कहुँ, राजानिसों परजानि को नातो ॥

८—दार्‍यो लै रदन सुधा सदन वदन लियो,
भृकुटी मदन धन चंपे लेत गात है ।
दृग मृगलीने मृग राज काटि केकी कच,
कुचानि कलस कुम्भ लेते सकुचात है ॥
कोकिल वचन लेत रंभा जुग जंघा चाहैं,
करन प्रवाल औचक रन जलजात है ।

प्रीतम पुकार लाग्यो प्यारी सुनि सौत कहा,
हहा चितै देखु चोर चोरी करे जातु है ॥

६—वाजी हरे रसना रस केलि में,
कोमल के विछुआन की वानी।
प्यारी रही परजंक निसंक ह्वै,
प्यारे के अंक महासुख सानी ॥
ऊँचे पग चापि चढ़ी उतरी,
कहूँ आवत लोगनु जात न जानी।
छोरि छिपाइन खोलि हियो,
कवि देव दूहूँ मिलि के रति मानी ॥

उपरोक्त सूक्तियों के अतिरिक्त २६६, २७०, ६, ८, १५, १७, १८, १६, २०, ३०, ३३, ३६, ४३, ५१, ४६, ५७, ६१, ७१, ७३, ७५, ७६, ७७, ८४, ६३, १०५, १०७, १०६, ११२, ११४, १२४, १३०, १३१, १५२, १६१, १७६, १७६, १६२, १६६, १६६, २००, २०५, २११, २१२, २१३, २१४, २४८, २५८, २६०, २६२, २७५, २६०, तथा २६५ कवित्व पढ़ने योग्य हैं। जिनमें मधुर साहित्य भरा है और भावों का उत्तम प्रभाव है।

अष्टयाम

महाकवि देव की द्वितीय रचना है। इस ग्रन्थ में उन्होंने दिन के प्रत्येक पहर घटिकाओं में होने वाले दम्पति-विलास

लिखे हैं। इसमें देव की मनोमोदनी काव्य छटा विराजमान है। यह वही पुस्तक है जो आजम शाह को सुनाई गई थी और उनकी ख्याति हुई।

\+ + + +

"वानि साहब आजमशाह के साथ छकी वनिता छवि छावति है।"

\+ + + +

"केलि के महल फूलि रही फुलवारी देव
ताही में उज्यारी प्यारी फूली फुलवारी सी।"

\+ + + +

सब अंग अँगोछि उरोजनि पौंछि कै, अंबर चारु हरे पहिरे।
गहिने गहि नूतन मोतिन के, पहिले करि अंगन ते वहिरे॥
कवि देव कह्यो दिन सो तिय दीन ह्वै, दीरघ ह्वै न हहा रहिरे।
सकुची अब पूछन कंत लगे, इन ओठनि दंत लगे गहिरे॥

\+ + + +

चित्र विचित्र विलोकन कों, पियाचित्र के मन्दिर सुन्दरि आनी।
आपनी औरुर मित्रकी मूरति, चारु चरित्र चितै सुख सानी॥
त्यों हँसि लालन वालकों केलि, दिखाई विषै विपरीत समानी।
लाज के भार लची तरुनी वकुची, वरुनी सकुची सतरानी॥

\+ + + +

वा चकई को भयो चित चीतो,
चितौंति चहूँ दिसि चाव सों नाची।

ह्वैगई छीन छपाकर की छवि,
जामिन जौन्ह जवै वह जाँची ॥
बोलति वैरी विहंगम देव,
सुसौतिन के घर सम्पति साँची ।
लोहू पियो जु वियोगिनि को,
सु लियो मुँह लाल पिशाचिन प्राची ॥

\+ + + +

"बड़ भागी लला उर लागी जऊ,
तिय जागी तऊ हिलकी न रहै ।"

\+ + + +

लखि सासुहिं हास छिपाये रहै,
ननदी लखि जी उपजावति भीतहिं ।
सौतिन सों सतराइ चितौति,
जिठानिन सों जिय ठानति प्रीतहिं ॥
धाय सों पूंछत वात विनैकी,
सखीन सों सीखे सुहाग की रीतहिं ।
दासिन हूँ सो उदासिन देव,
बढ़ावत नेम सों प्रेम प्रतीतिहिं ॥

\+ + + +

तोरि तनी अपने कर कंचुकी, डारि उतारि उतै पिय ही है ।
ऐंपन पींड़िसी मींड़ित त्यों, तिय सों लपटी लपटोहि रही है ॥

लिखे हैं। इसमें देव की मनोमोदनी काव्य छटा विराजमान है। यह वही पुस्तक है जो आजम शाह को सुनाई गई थी और उनकी ख्याति हुई।

\+ + + +

"बानि साहब आजमशाह के साथ छकी वनिता छवि छावति है।"

\+ + + +

"केलि के महल फूलि रही फुलवारी देव
ताही में उज्यारी प्यारी फूली फुलवारी सी।"

\+ + + +

सब अंग अँगोछि उरोजनि पौंछि कै, अंबर चारु हरे पहिरे।
गहिने गहि नूतन मोतिन के, पहिले करि अंगन ते वहिरे॥
कवि देव कह्यो दिन सो तिय दीन ह्वै, दीरघ ह्वै न हहा रहिरे।
सकुची अब पूछन कंत लगे, इन ओंठनि दंत लगे गहिरे॥

\+ + + +

चित्र विचित्र विलोकन कों, पियाचित्र के मन्दिर सुन्दरि आनी।
आपनी औरुर मित्रकी मूरति, चारु चरित्र चितै सुख सानी॥
त्यों हँसि लालन बालकौं केलि, दिखाई विपै विपरीत समानी।
लाज के भार लची तरुनी वकुची, वरुनी सकुची सतरानी॥

\+ + + +

वा चकई को भयो चित चीतो,
चितौंति चहूँ दिसि चाव सों नाची।

ह्वैगई छीन छपाकर की छवि,
जामिन जौन्ह जवै वह जाँची ॥
वोलति वैरी विहंगम देव,
सुसौतिन के घर सम्पति साँची ।
लोहू पियो जु वियोगिनि को,
सु लियो मुँह लाल पिशाचिन प्राची ॥

\+ + + +

"वड़ भागी लला उर लागी जऊ,
तिय जागी तऊ हिलकी न रहै ।"

\+ + + +

लखि सासुहिं हास छिपाये रहै,
ननदी लखि जी उपजावति भीतहिं ।
सौतिन सों सतराइ चितौति,
जिठानिन सों जिय ठानति प्रीतहिं ॥
धाय सों पूंछत वात विनैकी,
सखीन सों सीखै सुहाग की रीतहिं ।
दासिन हूँ सो उदासिन देव,
बढ़ावत नेम सों प्रेम प्रतीतिहिं ॥

\+ + + +

तोरि तनी अपने कर कंचुकी, डारि उतारि उतै पिय ही है ।
ऐंपन पीड़िसी मीड़ित त्यों, तिय सों लपटी लपटोहि रही है ॥

लिखे हैं। इसमें देव की मनोमोदनी काव्य छटा विराजमान है। यह वही पुस्तक है जो आजम शाह को सुनाई गई थी और उनकी ख्याति हुई।

\+ + + +

"वानि साहव आजमशाह के साथ छकी वनिता छवि छावति है।"

\+ + + +

"केलि के महल फूलि रही फुलवारी देव
ताही में उज्यारी प्यारी फूली फुलवारी सी।"

\+ + + +

सब अंग अँगोछि उरोजनि पौंछि कै, अंवर चारु हरे पहिरे।
गहिने गहि नूतन मोतिन के, पहिले करि अंगन ते वहिरे॥
कवि देव कह्यो दिन सो तिय दीन ह्वै, दीरघ ह्वै न हहा रहिरे।
सकुची अब पूछन कंत लगे, इन ओंठनि दंत लगे गहिरे॥

\+ + + +

चित्र विचित्र विलोकन कों, पियाचित्र के मन्दिर सुन्दरि आनी।
आपनी औरुर मित्रकी मूरति, चारु चरित्र चितै सुख सानी॥
त्यों हँसि लालन वालकौं केलि, दिखाई विपै विपरीत समानी।
लाज के भार लची तरुनी वकुची, वरुनी सकुची सतरानी॥

\+ + + +

वा चकई को भयो चित चीतो,
चितौंति चहूँ दिसि चाव सों नाची।

ह्वैगई छीन छपाकर की छवि,
जामिन जौन्ह जवै वह जाँची ॥
बोलति वैरी विहंगम देव,
सुसौतिन के घर सम्पति साँची ।
लोहू पियो जु वियोगिनि को,
सु लियो मुँह लाल पिशाचिन प्राची ॥

+ + + +

"बड़ भागी लला उर लागी जऊ,
तिय जागी तऊ हिलकी न रहै ।"

+ + + +

लखि सासुहिं हास छिपाये रहै,
ननदी लखि जी उपजावति भीतहिं ।
सौतिन सों सतराइ चितौति,
जिठानिन सों जिय ठानति प्रीतहिं ॥
धाय सों पूंछत वात विनैकी,
सखीन सों सीखै सुहाग की रीतहिं ।
दासिन हूँ सो उदासिन देव,
वढ़ावत नेम सों प्रेम प्रतीतिहिं ॥

+ + + +

तोरि तनी अपने कर कंचुकी, डारि उतारि उतै पिय ही है ।
ऐंपन पीड़िसी मीड़ित त्यों, तिय सों लपटी लपटोहि रही है ॥

ज्यों ज्यों पिये पिय ओठानि को रस, देव त्यों बाढ़ति प्यास तही है।
चंपक पात से गातन में, नख घातिन देत अघात नहीं है॥

\+ \+ \+ \+

हौंसु गँवाई करी सुख केलि, तिया तबही सब अङ्ग सुधारे।
तानि लियो पट घूंघट में, झलकैं दृग लाल भरे झपकारे॥
देव जू देखि लगे ललचान, लला के कपोत कँपैं पुलकारे।
मार मनौ सर सार के रोस कै, एक ही बार हजारक मारे॥

\+ \+ \+ \+

"तब प्यारी कह्यौ बलिहारी करौं, अपनी तनु हौं अपने पिय में।"

\+ \+ \+ \+

रूप अनूप है एक तुही तिय, तोसी न और मही माहियां।
कहुं होय हमारे कहा कहिये, तब तो हम सो मघवान हियां॥
परजंक परे दोउ अंक भरे, सु धरे सिर दोऊ दुहूं बहियां।
सुनि यों भई भावती के मुख की, छिन में सुख बादर की छहियां॥

\+ \+ \+ \+

रस विलास

महाकवि देवजी ने इसमें नायिकाओं के यौवन, रूप, शील, गुण, प्रेम, कुल, वैभव भूषण का वर्णन कर उन्हें अष्टाङ्ग पूर्ण बनाया है। इस ग्रन्थ के विभाग बड़े उत्कृष्ट हैं। नायिका भेद के आठ अंग अर्थात् जाति, कर्म, गुण, देश, काल, वय, प्रकृति और

सत्व का वर्णन बड़ी उदात्त शैली से किया है। "जाति विलास" की भाँति इसमें विभिन्न देशों की महिलाओं के शील, स्वभाव, रूप, लावण्य, नोंक पलक का वर्णन न करके व्यवसायिरिमका जातियों का विशद् और रोचक वर्णन किया है। जौहरिन, छीपिन, पटुइन, सुनारिन गंधिन, तेली, तमोलिन, वनेनी, कुम्हारी, दरजिन, चूहरी, ब्राह्मणी, रजपूतनि, खत्रानी, काइथिन, धोविन, अहीरिन, काछिन, वनजारिन, कलारिन, मालिन आदि आदि का वर्णन है। जाति विलास में भठियारिन का वर्णन है वह इसमें नहीं है। शेष उपरोक्त स्त्रियों के गुण, कर्म, स्वभाव को प्रकृति पर्यवेक्षण से सम्बन्धित कर कमाल कर दिया है।

\+ \+ \+ \+

दंपति एक ही सेज परे, पग पींडुरी दावि दुहूँ को रिझावति।
आपने ऊँचे उठोहैं कठोर, उरोजनि को मलि ऐंड़ी मिलावति॥
भोंहै अमेंठि रहै ठकुराइन, ठाकुर के उर काम जगावति।
लौड़ी अनोखी लड़ावति लाल, कि पाइ पलोटति कि चाहैं चलावति॥

\+ \+ \+ \+

काम की कुमारी सी परम सुखकारी यह,
जाकी है कुमारी महाभाग वा जनक के।
सलज सुसील सुलुनाई की सलाका,
सैल सुता सों सलोनी वैन वीना की भनक के॥
एहो अवहीं तैं वनदेवी ऐसी देखी,
देव देवी तैं अगन गुन गन ह्वै जनक के।

कनक कनक तन तनक तनक मन,
झनक मनक कर कंकन कनक के ॥

\+ + + +

"सुरति सँयोग को 'नहीं' न करै,
निसदिन भोग की गुपत गुपचुप की मिठाई सी ।"

\+ + + +

कुँवर किशोरी मुख मोरी करै,
सँखियन सों चोराचोरी चित प्राति रोरी सी रची रही ।

\+ + + +

धोखे हू कहौं जो कटु बोल तो कटाऊँ जीभ,
छारि करौं अँखियन की आँसू झलकानि पै ।
कौन कहै कैसी सौति सौ तौ ठकुराइन लिखी,
है ब्रज बालिन के भाल फलकानि पै ॥
ह्वै रहौं नजीकी हौं नजीकी दुचिताई रहौ,
पीकी, प्रानप्यारी लहौं नीकी ललकानि पै ।
दूजो नाहिं देव पूजौं राधिका के पग पर,
पलक तुलाऊँ धरि ध्यान पलकानि पै ॥

\+ + + +

वे दिन नाहिं भटू भ्रमके, जब बातें नई झाकि कैं झिखई हौं,
चोप सु दै चित में रसकी, दिन रातिन देव दुरै दिखई हौं ।

ढीठ भई ढिग सोवन स्याम के, कामकला लिख ज्यों लिखई हौं,
आनहिं क्यों उर आनहूँ जू, अबतौ हरि से बिखई बिखई हौं ॥

+ + + +

जोहरनी छीपिन कही, पटविनु और सुनार ।
गांधिनि तोलि तमोरिका, पुनि वरणीय कुलारि ॥

+ + + +

जोवन जवाहर सों जगमगे होइ जोइ,
जौहरी की जोइ जगु जाहर करतु है ।

+ + + +

चूनरी सुरंग अंग ईंगुर के रंग देव,
बैठी परचूनी की दुकान पर चूनी सी ।

+ + + +

सुजान विनोद

१—पीक भरी पलकैं झलकैं,
अलकैं जु गड़ी सु लसी भुज खोज की ।
छाइ रहे छत छैल की छाती में,
छाप बनी कहुँ ओछे उरोज की ॥
ताहि चितौति बड़ी अँखियान ते,
नीकी चितौन चली अति ओज की ।

बालम और बिलोकि कैं बाल,
दई मनो खैंचि सनाल सरोज की ॥

२—कंचुकी सकोच कुच कुंचित कै सोचु तजि,
अरुन निचोलै साजि सूधी समुहाति है।
मार रन भूमै वर सार गहै घूमे देव,
रसना गुननि देत दावैं विहँसाति है ॥
विमुख न होति ज्यों दुखित सुख पावति त्यों,
सनमुख मुख पै घनेई घाइ खाति है।
अंग अंगपाति के विपाति रंग संगर में,
लोहू देखि सूर ज्यों विशेष विरझाति है ॥

३—नांह सों नाहीं करै मुख सों, मुख सों रति कोलि करै रतियाँ में।
लागे नखच्छत सीसी करै, करुना पकरै पै बकै बतियाँ में ॥
देव किते रति कूजाति के, तन कंप सजै नभ जे घतियाँ में।
जानु भुजान हू कों भहरावति, आवत छैल लगी छातियाँ में ॥

४—देव सुवरन गुन बींध्यो है मधुर महा,
अधर अखारे के सधर मुख ढार में।
मंद मुसक्यान पटु तानि पटु तानि पटु,
नथ कोपें नथ को निरत निराधार में ॥
घूँघट वितानि तानि तोराति तरयोनानि त्यों,
झलकें कपोल वेंदी ललकें लिलार में।

मोती लटकन को नवल नट नाचै सदा,
नैन नटवानु के चटुल चटसार में ॥

५—भई रंगराती अंगराती नियराती न,
सकुचि पियराती खेल अखिल अखंडितै ।
घोस दुरि वैठी ज्यों सुप्यो सँग चलावती न,
वदन हलावती सदन गुन मंडितै ॥
वेई हौ कि और ही निहारौं हों तिहारो रूप,
कीन्ही जिन देव सब सोतैं रस खंडितै ।
रैनि-सुख दैन रानी इन्द्रानी करै न सरि,
वारो रति रंग पति संग रति पंडितै ॥

६—मैं समुझायो नहीं समुझै, मन को अपनो अपमान न सूझै ।
मोहन मान करै तो गरैं परि, देव मनैवे कों जाइ अरूझै ॥
काको भयो सब सों झगरो, यह जाको मरै सु तौः वात न वूझै ।
सौति हमारी सु प्यारे की प्यारी, ता प्यारे के प्यारे परोसी सो जूझै ॥

७—देव पुरौनि के पात निचाने, तहँ जुग चक्र सिचान गहेरी ।
चीते के चंगुल में परिके, कर साइल थाइल ह्वै निवहैरी ॥
मींजि के मंजु दली कदली, लारिकें हरि कुंजर लुंज रहेरी ।
हेरी सिकार रहेरी कहूँ, ब्रजनाथ अहेरी ह्वै आजु अहेरी ॥

८—आवत वसन्त आलि गावत अनन्त गुन,
कंत विनु दिवस दुरंत पलु आधरी ।

धनि ते सुहागिनि वधू जे बड़ि भागिनि ह्वै,
बालम सों विमल विलोकैं सुख साधुरी ॥
उज्ज्वल महल सेज निर्मल विमल जोन्ह,
सीतल सुगन्ध मन्द पवन अगाधुरी ।
देव केलि कानन कह कहाति कोकिल,
लह लहाति लवँगी माहि महाती माधुरी ॥

९—चारों जाम जामिनं के जुग सेज गाये जागि,
आगि सी जगावत उसासनि की फूक ह्वै ।
गगन के उड़गन गनत ही गये लाखि,
लगन सो लाग्यो उड़गन पर ऊक ह्वै ॥
देव सुख दानि विनु को दुख वटावे आनि,
केते दुख दान परे सोवे मुख मूक ह्वै ।
सखियां ह्वै मेरी मोहि अखियां न सींचतीं तौ,
याही रतियां में जातीं छतियां छटूँक ह्वै ॥

१०—सुख दै वुलाई वनु सूनो दुख दूनो दियो,
एकै वार उससिं सरोस स्वास सरकानि ।
औचकि उचाकि चित चकित चितौति चहूँ,
मुकुत हरानि थहरानि कुच थरकानि ॥

रूप भोरे वारे वे अनूप अनियारे द्रग
कोरनि करारे कजरारे बूँद ढरकानि।
देव अरुनाई अरुनाई रिसि की छवि,
सुधा मधुर अधर मधुर फरकनि॥

+ + + +

दो०—*यहां विचारि प्रेमीन करे, विषयी जन को नांहि।*
विषय विकाने जननु की, प्रेमी छुवत न छांहि॥

+ + + +

उपरोक्त कृतियों के अतिरिक्त २५, २६, ४६, ३७, ३८, ३४, ३३, २८, २६, १८, २०, २३, १३, १४, १५, ६, ७, १२, १३, १४, ६, १०, ११, ५, ६, ८, ५८, ५४, ५०, ४६, ४५, ४६, ४०, ४१, ३६, २८, २६, ३०, २७, '१३, ६, ५८, ५०, ४७, ४८, ४५, २३, ८, १८, ५, ४१, ३६, ३५, ३१, ३२, २२, २३, १४, ११, १२, ६, ४, २, ४०, ३७, २६, ३४, २७, १४, १०, १२, ५२, ५३ तथा ४६ इतने मनोहर एवं भाव पूर्ण कवित्व हैं और जो उनसे भावोद्रेक होता है वह कोई अनुभवी ही जान सकता है। अरसिक मूर्धन्य तो अर्थ अवगाहन भी नहीं कर सकते।

+ + + +

श्री रघुनाथ लहरी (अप्रकाशित)

श्री हनुमतेनमः

कर्त्तुं परोक्षमपरोक्षतंविदेहस्तीव्रं
सुयोग्य × मलं समे × साधयत्सः।

तद्वांछितार्थ परिपूर्त्तय आशु वै
तद्यामातृतां समगमः करुणा मयत्वं ॥

+ + + +

नोट—इस पुस्तक के पृष्ठ पुरानी लिपि होने से इतने परस्पर चिपक गये हैं कि उसका उद्धार होना अब कठिन है। जो सुवाच्य थे उद्धृत किये जा सके हैं। पाठ अधिकांश में अस्पष्ट है।

+ + + +

वैराग्य शतक

इस पुस्तक को वैराग्य विलास भी कहते हैं। इसमें चार पच्चीसियाँ हैं उनका यह रूप है। और इसी को देव—शतक भी कहने लगे हैं।

या मन मानिक के मनियां रख मोल तिहूँपुर राजानि भाख्यो।
सो मनु ले मिलि देव गुपालहिं; साधुन सिद्ध सुधाधर चाख्यो॥
सो मनु बेंचि विषै विष कारन, काल दलाल अजौं अभिलाख्यो।
कंचन सो तन देखि भ्रमो मनु, सो धनु ले धन सों धरि राख्यो॥

+ + + +

सूर विनु वासर मलीन आस पास रहे,
चन्द विन राति भाँति भाँति भीत भूत की।
कंदिर सो मन्दिर दिपै न देव दीप विनु,
तेल विनु दीप ज्यों दिपै न वाती सूत की॥

नेह विनु दम्पाति ज्यों दान विनु सम्पाति ज्यों,
विद्या विनु पूत जैसे माता विनु पूत की।
नारी विन गेहु जैसे ज्ञान विनु देह जैसे,
ऐसे मैली मूल मूत छूते थैली मलमूत की॥

+ + + +

जगद्दर्शन पचीसी

काहू न संग गई गनिका जम,
को को न कोप गयो कुपरी कों।
देव तू काको भयो विगरे सठ,
झठो झुरै झिगरे झुपरी को॥
राखि में राखि सकैगो जु राखति,
जातन चन्दन की चुपरी कों।
स्वान मसान में खोंचि है खोपरि,
जंबुक खोहन में खुपरी कों॥

+ + + +

काम पर्‍यो दुलही अरु दूलहि, चाकर यार ते द्वार तें छूटे।
माया के वाजने वाजि गये, परभात हीं भात खवा उठ वूटे॥
आतिसवाजी गई छिन में छुटि, देखि अजों उठिकें अँख फूटे।
देव दिखैयेन दाग बने, रहे वाग बने ते वरोठेहि लूटे॥

+ + + +

तद्वांछितार्थ परिपूर्त्तय आशु वै
तद्यामातृतां समगमः करुणा मयत्वं ॥

\+ + + +

नोट—इस पुस्तक के पृष्ठ पुरानी लिपि होने से इतने परस्पर चिपक गये हैं कि उसका उद्धार होना अब कठिन है। जो सुवाच्य थे उद्धृत किये जा सके हैं। पाठ अधिकांश में अस्पष्ट है।

\+ + + +

वैराग्य शतक

इस पुस्तक को वैराग्य विलास भी कहते हैं। इसमें चार पचीसियाँ हैं उनका यह रूप है। और इसी को देव—शतक भी कहने लगे हैं।

या मन मानिक के मनियां रख मोल तिहूँपुर राजनि भाख्यो।
सो मनु लै मिलि देव गुपालहिं; साधुन सिद्ध सुधाधर चाख्यो ॥
सो मनु बेंचि विषै विष कारन, काल दलाल अजौं अभिलाख्यो।
कंचन सो तन देखि भ्रमो मनु, सो धनु लै धन सों धरि राख्यो ॥

\+ + + +

सूर विनु वासर मलीन आस पास रहे,
चन्द विन राति भाँति भाँति भीत भूत की।
कंदिर सो मन्दिर दिपै न देव दीप विनु,
तेल विनु दीप ज्यों दिपै न वाती सूत की ॥

नेह विनु दम्पाति ज्यों दान विनु सम्पाति ज्यों,
विद्या विनु पूत जैसे माता विनु पूत की ।
नारी विन गेहु जैसे ज्ञान विनु देह जैसे,
ऐसे मैली मूल मूत छूते थैली मलमूत की ॥

\+ + + +

जगदर्शन पचीसी

काहू न संग गई गनिका जम,
को को न कोप गयो कुपरी कों ।
देव तू काको भयो विगरे सठ,
झठो झुरै झिगरे झुपरी को ॥
राखि में राखि सकैगो जु राखति,
जातन चन्दन की चुपरी कों ।
स्वान मसान में खोंचि है खोपरि,
जंबुक खोहन में खुपरी कों ॥

\+ + + +

काम परयो दुलही अरु दूलहि, चाकर यार ते द्वार तें छूटे ।
माया के बाजने बाजि गये, परभात ही भात खवा उठ बूटे ॥
आतिसवाजी गई छिन में छुटि, देखि अजों उठिकें अँख फूटे ।
देव दिखैयेन दाग बने, रहे बाग बने ते बरोठेहि लूटे ॥

\+ + + +

संपति में ऐंठि बैठि चौंतरा अदालत के,
विपति में पहनि बैठे पाँव भुनभुनियाँ।
जे तो सुख संपति इतोई दुख विपति में,
संपति में मिरजा विपति परैं धुनियाँ॥

संपति तें विपति विपति हू तें संपति है,
संपति औ विपति बराबर कै गुनियाँ।
संपति में काँय काँय विपति में भाँय भाँय,
काँय भाँय काँय भाँय देखी सब दुनियाँ॥

+ + + +

बाँदरि के कर देखि अमीफल, जोरति प्रीति कहा निमटैगी।
संगति के फणि की मणि सीसते, चाहत देव सुकेसी ठटैगी॥
देवी के बोक लौं लोक डरात पै, डारि हरा शिर नारि कटैगी।
आयु सु आनि घटे सो घटे जब, कानि घटै तब का न घटैगी॥

+ + + +

इसमें १६, २२, २५, २३, २४ तथा १८ वाँ कवित्त बड़े महत्व के हैं।

+ + + +

आत्मदर्शन पच्चीसी

गर्भ तें गिरत भयो अर्भक कहायो कहाँ,
कहाँ को बहायो कहाँ कहाँ चिल्लान लग्यो।

मात कुच कंचन के घट रस सींच्यो रंग,
खट रस सान्यो संग खटरस खान लग्यो ॥
आपनो परायो पहिचान्यो देव सुख दुख,
जान्यो काम क्रोध लोभ मोह में निकान लग्यो ।
सेज तें धरनि पर्‌यो तौलों जम हूँ सो लर्‌यो,
मर्‌यो मर्‌यो सुन्यो पर्‌यो परयो पछितान लग्यो ॥

\+ + + +

पौन को पकरि करि गौन कों अकास भौन,
भीतनि पै दौरि काहू भाँतिन भईनि भी ।
पैन्है पट धूम धौरे धोयकें गगन गंग,
तोर तोर तोर दै मिलाई मैं ससी की सी ॥
अब न निवाह मेरो देव सो कह्यो सँवेरो,
कागर को वेरो कौलौं वारिधि तरैगो जी ।
आज लों तो जियो वासि गंधरव गांव खाय,
भूत की मिठाई मृग तिसना को पानी पी ॥

\+ + + +

बाल तें तरुन अरु तरुन ते वूढ़ो भयो,
वूढ़े ते न बढ़ती विधाता गाढ़ि जायगो ।
महि तें महल चाढ़ि कोट न अचल चाढ़ि,
अचल तें ऊँचे आसमान चाढ़ि जायगो ॥

हरि भजले यह समै सब खेले कहा,
गेह सों सनेह देह ही सों काढ़ि जायगो।
थिर न कुबेर इन्द्र दौरे देव रवि चन्द,
बैठि रहे वैरी तू कहा लौ बाढ़ि जायगो ॥

+ + + +

हाय कहा कहीं चंचलि या मन की, गति में मति मेरी भुलानी।
हौं समुझाइ कियो रस भोगनु, देव तऊ तिसना विनसानी ॥
दाड़िम, दाखि, रसाल, सिता, मधु ऊख पिये औ पियूष से पानी।
पै न तऊ तरुनी तियके, अधरान की पीवे की प्यास बुझानी ॥

+ + + +

गांठि हि ते गिरि जात गये, यह पैहै न फेरि जुपै जग जोवे।
ठौरहि ठौर रहैं ठग ठाढ़ेही, पीर जिन्हें न हँसै किन रोवे ॥
दीजिये ताहि जो आपन सों, करि देव कलंकित पंकन धोवे।
बुद्धि वधू को 'बनाय के' सौंप तू मानिक सो मन धोखे न खोवे ॥

+ + + +

मोह महीप की बैठी सभा, मँहि लोभ ललाजू को सील लचायो।
काम से मंत्री, जहाँ मद मीत से, क्रोध से वीर सुरङ्ग रचायो ॥
पायो कछू न गमायो सबै गुन, देव सुदंभ अरंभ मचायो।
पाप त्रितापन काल की आंचनि, हौं इन पांचनि नाच नचायो ॥

+ + + +

उपरोक्त कवित्तों के साथ-साथ यदि २, ३, ११, १६, २१, २३, तथा १२ वाँ और २५ वाँ कवित्व और पढ़ा जावे तो आत्मानुभव होने लगता है और वैराग्य संदीपन होता है।

\+ \+ \+ \+

तत्त्वदर्शन पचीसी

१—थावर जंगम थूल अथूल जिती जग जन्तु की जाति जताई।
जे रज अंडज स्वेदज औ उद्भिज्ज, चहूँ युग देव बनाई॥
अन्तर जाके निरन्तर ते, उपजे विनसे तेहि माँहि समाई।
बाहर भीतर सो अध ऊर्ध, रह्यो भरि पूरि अकास की नाई॥

\+ \+ \+ \+

२—प्रौढ़ा जानि माया महारानी की घटाई कानि,
जसके चढ़ायो हौं कलस जेहिं कुलही।
उठि गई आसा हरि लई हेरि हिंसा सखी,
कहां गई तृसना यों सब तें अतुल ही॥
सांति है सहेली भाँति भाँतिके कराये सुख,
सेवा करै सुमति सुविद्या सखि सुलही।
श्रुति की सुता सुदैया दुलही मिलाइ दई,
मेरे मन छैल कों छिमा सु छैल दुलही॥

\+ \+ \+ \+

३—मूढ़ ह्वै रह्यो है गूढ़ गति क्यों न ढूँढ़त है,
गूढ़ चर इन्द्रिय अगूढ़ चोर मारि दै।

बाहिर हू भीतर निकारि अन्धकार सब,
ज्ञान की अगिनि सौं अयान बन बारि दै ॥
नेह भरे भाजन में कोमल अमल जोति,
ताहूँ को प्रकाश चहुँ पुंजन पसारि दै।
आवै उमड़ो सो मोह मेह घुमड़ो सो देव,
माया को मुड़ासो अँखियन तें उघारि दै ॥

+ + + +

कथा में न कंथा में न तीरथ के पंथा में न,
पोथी में न पाथ में न साथ की बसीति में।
जटा में न मुंडन न तिलक त्रिपुंडन न,
नदी कूप कुंडन अन्हान दान रीति में ॥
पीठ मठ मंडल न कुंडल कमंडल न,
माला दंड में न देव देहरि की भीति में।
आप ही अपार पारावार प्रभू पूरि रह्यो,
पाइये प्रगट परमेश्वर प्रतीति में ॥

+ + + +

देव घनश्याम रंग बरस्यो अखण्ड धार,
पूरन अपार प्रेम पूरन सहिपर्‌यो।
विषै बन्धु बूड़े मद मोह सुत दबे दोसि,
अहंकार मीति मरि मुरझि महिपर्‌यो ॥

आशा तृपना सी वहू वेटी लै निकासि भाजी,
माया मिहरी पर देहरी पै न राहि पर्‌यो।
गयो घर हेरयो लयो वन में वसेरो नेह,
नदी के किनारे मन मंदिर ढह पर्‌यो॥

\+ + + +

एकै अभिलाष लाख लाख भाँति खोलियत,
देखियत न दूसरो देव चराचर में।
जासों मन राचे तासों तन मन राचै रुचि,
भरि के उघरे नाचै साँचे करि कर में॥
पाँचन के आगे आँच लागे ते न लौट जाय,
साँचि देखि प्यारे करें सतीलौं वैठि सर में।
प्रेमी सों कहत कोई ठाकुर न ऐंठो सुनि,
वैठो गड़ि गहिरे तो वैठो प्रेम घर में॥

\+ + + +

इसी प्रकार कवित्व सं० ७, ८, ६, १०, ११, १६, १७, १६, १४, २१, २३ तथा २४ प्रशंसनीय तत्व भरे शब्दों में रचे गये हैं। जिस से भक्ति और उदासीनता का श्रोत प्रवाहित्त होता है।

\+ + + +

प्रेम पचीसी (अप्रकाशित)

जाके मद मात्यो उमात्यो न कहूँ कोई जहाँ,
वूड्यो उछर्‌यो न तर्‌यो शोभा सिन्धु साम है।

बाहिर हू भीतर निकारि अन्धकार सब,
ज्ञान की अगिनि सौं अयान बन बारि दै ॥
नेह भरे भाजन में कोमल अमल जोति,
ताहूँ को प्रकाश चहुँ पुंजन पसारि दै।
आवै उमड़ो सो मोह मेह घुमड़ो सो देव,
माया को मुड़ासो अँखियन तें उघारि दै ॥

+ + + +

कथा में न कंथा में न तीरथ के पंथा में न,
पोथी में न पाथ में न साथ की बसीति में।
जटा में न मुंडन न तिलक त्रिपुंडन न,
नदी कूप कुंडन अन्हान दान रीति में ॥
पीठ मठ मंडल न कुंडल कमंडल न,
माला दंड में न देव देहरि की भीति में।
आप ही अपार पारावार प्रभू पूरि रह्यो,
पाइये प्रगट परमेश्वर प्रतीति में ॥

+ + + +

देव घनश्याम रंग बरस्यो अखण्ड धार,
पूरन अपार प्रेम पूरन सहिपर्‌यो।
त्रिपै बन्धु बूड़े मद मोह सुत दबे दोलि,
अहंकार मीति मरि मुरझि महिपर्‌यो ॥

आशा तृषना सी बहू बेटी लै निकसि भाजी,
माया मिहरी पर देहरी पै न राहि पर्‌यो।
गयो घर हेर्‌यो लयो वन में बसेरो नेह,
नदी के किनारे मन मंदिर ढह पर्‌यो॥

\+ + + +

एकै अभिलाष लाख लाख भाँति खोलियत,
देखियत न दूसरो देव चराचर में।
जासों मन राचै तासों तन मन राचै रुचि,
भरि के उघरे नाचै साँचे करि कर में॥
पाँचन के आगे आँच लागे ते न लौट जाय,
साँचि देखि प्यारे करें सतीलौं बैठि सर में।
प्रेमी सों कहत कोई ठाकुर न ऐंठो सुनि,
बैठो गड़ि गहिरे तो बैठो प्रेम घर में॥

\+ + + +

इसी प्रकार कवित्व सं० ७, ८, ६, १०, ११, १६, १७, १६, १४, २१, २३ तथा २४ प्रशंसनीय तत्व भरे शब्दों में रचे गये हैं। जिस से भक्ति और उदासीनता का श्रोत प्रवाहित होता है।

\+ + + +

प्रेम पचीसी (अप्रकाशित)

जाके मद मात्यो उमात्यो न कहूँ कोई जहाँ,
बूड्यो उछर्‌यो न तर्‌यो शोभा सिन्धु साम है।

पीवत ही जाहि कोई मर्‌यो सो अमर भयो,
बौरान्यो जगत जान्यो मान्यो सुखधाम है ॥
चख के चसाकि भरि चाखत ही जाहि फिरि,
चाख्यो ना पियूष कछु एसो अभिराम है।
दम्पाति सरूप ब्रज औतर्‌यो अनूप सोई,
देव कियो देखि प्रेम रस को प्रनाम है ॥

\+ + + +

चाखिकें चखौंके चख भरि चोखो छवि छातो,
मैनछत छिति परी पीर छातिया की हो।
गोकुल के छैल ढूँढ़े गूढ़ वन सैल हौं,
अकेली याहि गैल तोको पेलि करि थाकी हो ॥
मन्द मुसिकाय लै समाय जी में ज्याय ली हो,
पाइले पियूष प्यासी अधर सुधाकी हो।
मेरे सुखदाई देरे देव तू दिखाई नेकु,?
एरे ब्रज भूप तेरे रूप रस छाकी हौं ॥

\+ + + +

धुरतें मधुर मधुरस हू विधुर करे,
मधुरस बेधि उर गुरु रस फूल्यो है।
ध्रुव प्रह्लाद हिये हूव आह्लाद जासों,
प्रभुता त्रिलोकहूकी तिल समतूली है ॥

बदमसे वेद मतवारे मतवारे परे,
मोहे मुनि देव शूली उर शूली है।
प्यालो भरि देरी ऐरी सुरति कलारी तेरी,
प्रेम मदिरा सो मोहिं मेरी सुधि भूली है॥

+ + + +

अंजन सो रँगीं ते निरंजनाहिं जाने कहा,
फीको लागे फूल रस चाखत ही चौंडी को।
तूरज बजाय सूर सूरज को बेधि जाय,
ताहि अब बचन सुनावत हो डौंडी को॥
ऊधो पूरे पारख हो परखे बनाइ तुम,
पार ही पै बोरो पैर वैयाधार औंडी को।
दै मन मानिक हरि हीरा गाँठि बाँध्यो हम,
तिन्हैं तुम बनज बतावत हो कौड़ी को॥

+ + + +

सखिन बिसारि लाज काज डर डारि मिली,
मोहि मिल्यो लाल डहकाये डहकत नाँहिं।
पात ऐसी बातरी विचारी चंग लहकत,
पाहन पवन लहकाये लहकत नाँहिं॥
हिलि मिलि फूलनि फुलेल बास फैली देव,
तेल की तिलाई महकाये महकत नाँहिं।

जौही लौं न जाने अनजाने रही तौलौं अव,
मेरो मन माई वहकाये वहकत नाहिं ॥

+ + + +

मोहि तुम्हें अन्तर गिने न गुरुजन तुम,
मेरे हो तुम्हारी पै तऊ न पछिलाति हौ।
पूरि रहे या तन में मन में न आवत हो,
पंच पूछि देखे कहूँ काहू न हिलत हौ ॥
ऊँचे चढ़ि रोई कोई देत न दिखाई देव,
गातिन के ओट बैठे वातिन गिलत हौ।
ऐसे निरमोही महा मोही में वसत अरु,
मोही तें निकसि नेक मोही न मिलत हौ ॥

+ + + +

कैसी कुल वहू कुल कैसी कुल वहू कौन,
तू है यह कौन पूछि काहू कुलटाहिरी।
कहा गयो तोहि कहा कहि तोहि तोहि मोहि,
किधौ और काहू ओर कहा न तो काहिरी ॥
जाति ही तें जाति कैसी जाति कोहै जाति एरी,
तोसों हौं रिसात मेरी मोसों न रिसाहिरी।
लाज गहु लाज गहु लाज गहिवे को रही,
पंच हँसिहैरी हौं तो पंचन ते बाहिरी ॥

+ + + +

प्रेम की पीर न जानतीं वीर,
जो छेज्ञ कटाच्छन सों कहुं छ्वै है।
देव तुही त्रासि है हँसि है वलि,
रूसि रुसे है सु वावरी ह्वै है॥
आई तो सीख सिखावन कों,
पै सीखिहु अपनी तू मति खूवै है।
मोही सी मोही सी मोहि कहै,
फिरि नेकु में मोही सी मोही सी ह्वै है॥

\+ + + +

उद्धरित रचना से जो शान्ति और शान्त रस का संचार होता है उसी प्रकार इसका २, ७, १०, १२, १७, १८, २०, २२, २३ तथा २६ वां कवित्त्व भी अत्यन्त रोचक एवं शान्तिप्रद है।

\+ + + +

शक्ति विलास (अप्रकाशित)

कवि देवजी ने शिवा को आदि शक्ति मान कर जो प्रार्थना रूप वांच्छा प्रगति की है वह निम्नस्थ श्लोकों से विदित होगी:—

शव रूपोऽहं मातस्त्वयासि सर्वकार्य्ये करणोहि।
स्यात्मानं शिव मिव हे जगदंव प्राणनायिकेऽवेद्ये॥३४
पुरुषस्तदाहि गण्यः शक्तियुतः स्याद्यदान्यथा नैव।
तत्पुरुषत्वं तस्या सा शक्तिस्त्वं मया धृतोरसि भो?॥३५

श्री भूधर कुल कमल कदितवन भानुवीय रुचि रूपे।
मम हृदय मोह तिमिरं दूरो कुरु शंभु महिले त्वं ॥७॥
त्वत्पद सेवतोऽयं तरित्त नवां भोनिधिं माशु गोपद्वत्
इति चिन्त्य देवदत्त स्त्वच्चरणार्चारतो विहायऽन्यं ॥८॥
अधमा वहवो गुणा इति वेदा वै वदन्ति नो जल्पः।
देवं पुण्यविहीनो गणितष्किन्नैव चाधमाल्पा मपि ॥२८
वहुधा त्वं च समर्थाऽय मुत्तमो योगः।
स्या दन्य था कदाचित व दोषानास्ति दोष भारोमे ॥२१
तव नाम संजपन तो रसनाग्रे भारती मद्दा महती।
विरचि पति लांऽवंतत्तव शर्मा हं जपामि गिरितनये ॥२५
चरण द्वय परिषेवी हैमवतिप्रास्ति देवदत्तोऽयं।
तदुपरियत्करणी कुरु गिरिजेति द्रुतं दयामूर्तेः। ॥१८॥
मयि सुदयां विस्तारयमो हरिं मारयाशु विंवोष्ठि।
कारय वाणि विलास तारय घोरां वुधे भंवा दंव। ॥५६
विज्ञप्सिं श्रृणु श्रृणु हे शिव भामिन देवदत्तोयां।
त्वत्प्रेमाम्वुध मग्नः स्यामह्व मे तत्कुरुष्व न विलंवात्॥५७
कथयस्व मनोहर रूपधरे कवि देव मनस्त्वद रूप पदं।
प्रगमिष्यति तत्र गतं रुकदान तव पूजन मेव करिष्यति
वेगं ॥
वर्णाः प्रणव मया वैतन्मय मनवो मनुत्व मिहितेषां।
तन्मम जल्यप मनुतस्त्वं प्रीता देवि भवनित्यं ॥६१

आदि षोडश स्वर कास्तव रूपं शंकरस्य ते वर्णाः ।
कादय उमे विनात्वा मुच्चरितु मप्य हो नवै योग्याः ॥६२
ऊ इहैक एव भाति शक्ति मय सर्व वाङ्मयः श्यामे ।
प्रकृतौतत्तत्स्थानं प्राप्य प्राप्नोति नानात्वं ॥६३॥

\+ \+ \+ \+

पूर्वोक्त श्लोकों के समान भावोत्पादक अन्य श्लोकों में ६०, ६६, ६७, ६८, ७६, ७८, ७६, ८२, ८५, ८६, २१, २२, २३, २४, २६, ३१, ३२, १५, १३, ७३, ७४, ६४, ६६, ६८, ७०, ७२, ७८, ५१, ५३, ४८, ४६, ३६, ३७, तथा ३२ वाँ श्लोक बड़े हृदयग्राही और ललित सूक्त हैं। पाठ इनके भी अस्पष्ट हैं।

\+ \+ \+ \+

वखत विलास (अप्रकाशित)

कवि देव की कविता जितनी मनोहारिणी तथा भाव पूर्ण है उतनी ही सर्वप्रिय भी है। इनके निम्न लिखित दोहों से उनकी मनोभावना का अच्छा दिग्दर्शन होता है।

इक कर कुच इक नीति गाहि, परी वखत पियपास ।
सोवत कै जागत पिया, भूली पिय विसवास ॥१॥

सुरत जग्य वखतेस कें, आचारज रतिराय ।
वेद मंत्र पढ़ि दुहुनकों, रानी करतु वनाँय ॥२॥

चन्द कमल कीनी महा, श्यामजलद की रेख ।
वखत कामिनी, मृदुल तन कहा जडर ? औ रेख ॥३॥

वखत रिझावन तिय चली, हिय सजि वैन रसाल ।
तन सजि भूषनकों अधिक सोही दीधित काल ॥४॥

कर करि देखि परैन घन, वरसै तिय घन श्रास ।
करति कहा सुठि दीप गृह, वखत मिलन की श्रास ॥५॥

सकल तियनु ते वखत पिउ, उर में वसत निदान ।
प्यारी किमि रस अधिक दै, छई प्रेम विज्ञान ॥६॥

कहा करौं वखतेसु विनु, छाती कँपै निदान ।
निसकारी निस सी घटा; चढ़ी प्रवल असमान ॥७॥

पर तिय धामी ना सदा; वखत सिंह तुव धाम ।
तू काहे तें अनरसी, रस ही में विश्राम ॥८॥

वखत रसिक सों रसिकई, कीन्ही सुरत प्रसंग ।
अब न जाति को छवि अये, तब तें दूनी अंग ॥९॥

मधु रितु गुपित विलास गृह, वखत रसिक सँग वाल ।
चली अली कों टेरि कें, करति कहा तकि लाल ॥१०॥

नवल साज भूषित नवल, तिय वखतेश प्रसंग ।
लहति कहा आदर भली, फली सुरति रन अंग ॥११॥

× × × लग्यो अनित, कहा वखत पिय ध्याव ।
सूरतिवन्त सु या विषै, देवदत्त कवि गाव ॥१२॥

× × × ×

वखत विनोद (अप्रकाशित)

महा कवि देव जहाँ काव्य निपुण थे वहीं वह सांगीत प्रवीण भी प्रतीत होते हैं। इनके बनाये पद परम भागवत श्री सूरदासजी के पदों से टकराने वाले मिलते हैं। यथा—

गुरु गनपति श्री शारदा, सकल देव सुखमूल।
श्री वखतेश नरेश पर, सदा रहो अनुकूल ॥१॥

\+ + + +

*** राग खम्माच ***

गावोरी गणराज गनानन ॥
लम्बोदर गणराज विनायक,
मूसे को जाको वाहन, री।
सब सुख दायक बहु गुन लाइक,
सिद्ध सहाइक लागों पाइन, री ॥२॥
शंकर नन्दन सब जग वन्दन,
दुष्ट निकन्दन बुद्धि प्रमान, री।
मुक्ता मंडन भव भय खण्डन,
शत्रु विदंडन मोमन भावनु, री ॥३॥

\+ + + +

*** राग गौड़ ***

उमड़ी घटा चहुँ ओर सजनी मदन वन आली तैं।
सोई पायो पिय वखतासिंह मन भावन ॥

\+ + + +

निशिकारी भारी कर सौ करि, दिखय न तम अधिकाई ।
इहि अवसर रंग महल में सोइये वखतसिंह पिय पाई ॥

\+ + + +

ऐ ! मोरे प्यारे पियरुवारे वखतसिंह सबके ।
X X X सबके मन भावने पियरवारे X X ॥

× × × ×

※ राग ध्रुपद ※

श्री वखतेशहिं देहु कृपा करि संतत सुख नित नित्त नये—हाँ ।

× × × ×

हमरे कुचनु में धरिये चरन निज हरिये
X X X पीर बलवीर

× × × ×

प्रणत काम प्रद कमलज अरचित रुचि सागर गंभीर

× × × ×

※ मारवाड़ी राग ※

मारूड़ा उणीदारे निन्हारे घर आवै ऐ सेजरियाँ
पधारै लारी अमलारौ मातो रँगभीणो दरस दिखावे—ये
कुच पट खोले हाथ सों रीझि बोले हँस कंठ लगावै—ऐ
दिन दूलह श्री वखतसिंह पिय तन माणि लानै अति भावेण ॥

× × × ×

वखत शतक (अप्रकाशित)

यद्यपि इस पुस्तक में कवि देवजी ने अपनी इस कृति का कोई रचना काल नहीं दिया है; और इसी कारण मैंने "माधव-गीत" को पूर्व स्थान दिया है परन्तु यतः क्रमशः "श्री वखतसिंह" के सम्बन्ध में रचना का तारतम्य यहाँ दिखाया गया है इसी कारण यहाँ "वखत शतक" की रचना का उद्धरण करना समुचित प्रतीत हुआ, और "माधवगीत" का रसास्वादन पाठक गण इसके आगे करेंगे जो क्षम्य है।

× × × ×

गुरुहि वन्द शृंगारपति, नंद नँदन पद वन्द।
वखत शतक विरच्यो उमाहि, दोहा छन्द अनन्द ॥१॥

दोहा में है प्रश्न पुनि, उत्तर दोहइ मांहि।
समुझ कहौ सो चतुर जन, करि प्रवीनता चांहि ॥२॥

महाराज वखतेस के, नामाङ्कित सव दोह।
पढ़ौ सुनौ सव रसिक मिलि, करि मोपर अति छोह ॥३॥

समयो गनि वखतेश नृप, है प्रधान शृंगार।
सोइ वरनो दोहनि विरचि, धरि उर सरस विचार ॥४॥

सरवस मैं वखतेस को, कौन वस्तु प्रिय आहि।
याही में सो पाइये, देखो चित्त लगाहि ॥५॥

× × × ×

कुच माँगे उरु देति तिय, उरु माँगे कुच देइ।
रति माँगे ना देति है, वखतसिंह हाँ लेइ ॥६॥

× × × ×

क्यों ! सिसिके मसिकेहि क्यों !, मसिके ना रस लेइ।
मसिकें मिसु रसु वरसिहै ! वखत सिसिकि कें देइ ॥

× × × ×

इन दोहों ने इतनी अश्लीलता की गठरी अपने सिर पर धारण की है कि बोझों मरे जाते हैं। परन्तु देश, काल तथा अवस्था को देखते हुये मेरी शक्ति से बाहर है कि इनके बोझ को हलका करके दिखा दूं। रति का अंग, प्रथम समागम, 'ना' का निनाद, 'हां' की हाँसी, रति झलक, अधर आधार, लंक की लचक, मिसकी, सिसिकी, आदि आदि न जाने कहाँ कहाँ से देव जी ने अपने मस्तिष्क में इतना रस प्रबोध सूचक पदार्थ संकलन किया है कि उनके अनुभव की पराकाष्ठा मात्र कहकर इस विषय को पुष्पाञ्जलि देना ही ठीक होगा। मेरी दृष्टि में यह कवि का भाण ग्रन्थ है ! या भड़ौआ संग्रह !

माधव गीत (अप्रकाशित)

विभिन्न राग रागिनियों में कवि देव जी ने महाराज माधव-सिंह जी गोहद अथवा माधव श्रीकृष्ण के नाम पर कविता की है। रागों के वही क्रम हैं कि—जो अन्य भी वल्लभ साम्प्रदायिक कवियों की रचना में पाये जाते हैं। शब्दार्थ का सम्बन्ध तथा प्रासाद भाव व्यंजक अच्छी रचना है।

* ध्रुवपद *

अलसानी पिय प्रेम समानी,

विहँसि दयालि निहारी-रे ।

फुरत कनक कुंडल कुंतल रुचि,

ललित कपोल सुखारी-रे ॥

अमृत हास अवलोकनि श्री नँद नन्दन पूजन वारी-रे ।
अतुलित रास रसागि मुदित व्रज तिय यह हरि के ।
गुन गावन लागी पिय प्यारी रे ॥१॥

\+ \+ \+ \+

अतुलित रास रसाभि मुदित व्रज तिय यह हरि के
गुन गावन लागी पिय प्यारी रे ।

प्रिय नख परस प्रमोद मगन चित हराति न सारी रे ।
शरद चन्द मुख चन्द जगमँगी मन्द मन्द गति धारी रे ॥

भमित जानि राधेहि सखियन जुत पद किय प्रचल मुरारी रे ।
देवदत्त तव विविध अस्तुते इक मुखखियनु उचारी रे ॥

\+ \+ \+ \+

जय जय राधिका वर देव कृष्ण कृपाल श्री गोपाल ।
अज अनादि अखंडित द्युति सुमति सिंधु विशाल श्री गोपाल ॥
इक रमन निरखि त्रिभुवन अखिल जन चित्त अनुचरी दयाल ।
कल करत सुध वेनु गीत मोहित करे तिय तिलोक ॥
ओक जो तजै न मैन विशिख हत विहाल ।

तिपुर सुभग यह सरूप निरखि निरखि व्रज मृग द्रुम पुलकि
पुलकि प्रफुलित भे हम सचेत बाल ॥३१॥

\+ + + +

जल मंजन करि प्यारे निकसि कलिन्द सुता तट आये।
प्रियानि सहित नव वसन अभूषन पहिरि आपु राधेहि पहिराये॥
जल थल कुसुम सुगंध अनिल अँग अंग सनेह भाव उपजाये।
तव जमुना उपवन प्रविसे हरि सखियन मिलि अनु मंगल गाये॥
तोरे कुसम विविध क्यारीन वन विविध भांति के हार बनाये।
डारे उमँहि कठ हरि के तिन भारे सुख लहि गृह विसराये॥

\+ + + +

निज कर विरचि हार हरि राधा,
कंठ डारि अतुलित सुख पाये।
गुंजित गुंजि उन्मत्त मधुप गन,
पिय प्यारी सिर ऊपर छाये॥४॥
श्यामा श्याम किये गल बाहीं,
आसु पासु सखि वृन्द सुहाये।
ललित कटाच्छ परसपर अद्भुत,
अंग अनँग रंग बढ़ि आये॥५॥

\+ + + +

कलुष हरन चरन सरन लीन भवन त्यागि।
दीन भजन आश रमन समन सोच स्वपाल॥१॥

चितवनि तव सुन्दर तर हँसनि विकट भ्रकुटि कसनि।
लसनि रदनि की विलोक मदन उर विशाल ॥२॥
प्रमद सदन मदन ताप तपित हमहिं जानि पुरुष।
खन रव दीजिय निज दास भाव हाल ॥३॥
कलित अलक कुंडल वर हलक हलमलात गंड।
अधर अमृत लखनि हँसनि फँसत चित्त जाल ॥४॥
अभय प्रद भुजदंड जुगल उर दुत्ति कंठ हार।
प्रिय निवास जगत वास चित चोर हरिदयाल ॥५॥
स्तुति करि करित सु वदि हरिजन सब विपत हरन।
कृष्ण कृष्ण युगल रूप मनोहर मन हरन लाल ॥६॥

\+ + + +

श्री लक्ष्मी नृसिंह पंचासिका (अप्रकाशित)

यह महा कवि देव की कृति पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट है। यथा—

भगवत्सेवनतो वै सर्वं सुरवोनी ह चेति विश्वासः।
ज्ञान गजेन्द्रारूढौ नारायण हृद्गृहस्प्रकर्त्तव्यः॥

\+ + + +

श्री लक्ष्मी नृसिंहाष्टक (अप्रकाशित)

अष्टकं नृहरेरिदं कवि देवदत्त विनिर्मितम्।
ज्ञान भक्तिरमेश्वराद्भुत शक्ति वर्णन संयुतम्॥

\+ + + +

दो०—देव देव करुना यतन, हिरन कशिपु बानि जाइ ।
कीन उग्र तप तासु तप, तेज सहर नहिं जाइ ॥

इति श्री देवदत्त कवि कृत लक्ष्मी नृसिंहाष्टक समाप्तम् ।

+ + + +

वृत्त मञ्जरी (अप्रकाशित)

भाषा छन्द (पिंगल) का अद्वितीय ग्रन्थ है। अब यहाँ से ग्रन्थ बढ़ने के भय से अति संक्षेपतः कवि देव जी के समस्त ग्रन्थों का परिचय सोदाहरण दिया जावेगा।

ग्रन्थ दोइ विधि होत भुआनि मँह "कृत" इक जानु ।
दूजो कारित ग्रन्थ सो, समुझि सुमति उर आनु ॥१॥
निज इच्छा करिये सुकृति, पर प्रेरना जु होइँ ।
तासों "कारित" कहत हैं, कवि जन बुध सब कोइ ॥२॥
वृत्त मंजरी नाम या, ग्रन्थहिं "कारित" जानु ।
जोहि करि वायो ग्रन्थ यह, करहुँ तासु गुन गान ॥३॥

+ + + +

मनोभिनन्दिनी (अप्रकाशित)

कवि देव जी ने भाषा चित्रकाव्य का स्थान ऊँचा नहीं माना है और यही कारण है कि उनकी कोई उत्तम कृति चित्रकाव्य-सम्बन्धी प्राप्त भी नहीं है। परन्तु संस्कृत में चित्रकाव्य रचना कवि देव द्वारा देख कर अचंभित होना पड़ता है। यथा—

कश्चिल्ललित कुरंगस्य कुरंगी रम्यतीव संतुष्टः ।
प्रति कानन मति चकितो भ्रमति वदत्वं च कोहेतुः ॥१

वहति सुधीर समीरे जमुनातीरेपि संगता तरुणी ।
शौरिं विलोकयंती रोषवती स भवत्तत्किं ॥२॥

ललित लता रमणीये रमणीये प्रापितापि वरकुंजे ।
हरिमुख चन्द्रचकोरी ,नासोत्साऽतीवत चित्रं ॥३॥

वृन्दावन विचरेतं हरिमिति लावण्य दीपितं पश्य ।
लग्नोरस्य पिकस्मात्कमला-रक्तानुरक्ता-सीत ॥४॥

कुच कलशो परिहस्तं कान्तस्या वेद्य गोपिका काचित् ।
स्वप्नोत्थिता गतासा जांगुलि कीयांलयं कस्मात् ॥५॥

देव धुनी वर नूपुरं पश्यंत्या भूधरेन्द्र कन्यायाः ।
अलकावलीय मधुपीन्यय तत्तद्वारिपून्मतः ॥६॥

शारद शुक्ल निशायां परकीया कापि पीडिता रहसि ।
प्रियवेषं प्रियतम मित्मूचे मालिंग मालिंग ॥७॥

प्राविट् वारिद नीलं गोपाल पीत वास संदृष्टा ।
हरि संगताऽपि तरुणी हरि रहितेव प्रभीता सीत ॥८॥

\+ + + +

महावीर मल्लारि स्तोत्र (देवाष्टकं) (अप्रकाशित)

पुस्तक का नाम उसके विषय से ही प्रकट है । यह एक उत्तम आठ श्लोकों की रचना है ।

ओ३म् । स्फुरित कोटि भानु प्रतीकाश मुग्रं, सिताश्वंकर प्रोल्लसत्खड्ग पाद्यं । प्रभुलाल सा कांनभोकार गम्यं महावीर मल्लारिमंतर्भजामि ॥१

महासिद्ध योगीन्द्र भोगीन्द्रवंद्यं सुरौ घैर्न-रोघै सदा राधितं हि । अभीष्टार्थ सिद्धिं प्रदं देव देवं महावीर मल्लारिमंतर्भजामि ॥२॥

\+ + + +

महावीर मल्लारि देवाष्टकं यं—
पठे देवदत्तोरितं प्रेम भावात् ।
दारिद्र्य जेला महा शत्रु जेला—
भवेत्तद्गृहे राज्यलक्ष्मी निवासः ॥

श्री मद्दीक्षित देवदत्त कृतं मल्लारिदेवाष्टकं समाप्तं शुभम् ।

\+ + + +

कालिका स्तोत्र (अप्रकाशित)

महाकवि देव जी ने लखुना जिला इटावा की सुप्रसिद्ध "कालिका देवी" के प्रसन्नतार्थ एक कालिका स्तोत्र भी बनाया था। यह वीर रस पूर्ण ओजस्वी एवं उग्र काव्य है। यथा—

श्री काली जू पदलते भूमि भूमि धारी डग्गमग होत,
दिग्गज रदन टेकि रहत विनीत से ।
दिगपाल संकत अमर हू अतंकत जे,
मुनसिद्ध ससंकत समाधि में सभीत से ॥

देवदत्त अमरारि हृदि संक भारि धरि,
राारि सुधि छाँड़ि होत अति भै सहीत से।
काली के निसान कौ निनाद सुनि सत्रु विनु
अत्र ही मरत काल हूँकरि अजीत से ॥१॥

विकल निकल ह्वै उच्छालि धरनी पै खाइ
पटक झटाक सत्रु कोटि तज भाजते।
भाजि न सकत एक फिराति डराने गिरि,
परत मरत्त काहू थल में न राजते॥
सवद के जोर रच्छ वच्छ थल साल होत,
अतिहि विहाल युद्ध साजहि न साजते।
काज ते विहाइ खाइ मूरछा गिरत जव,
काली के निसान घोर जोर धुन वाजते ॥२॥

संका खाइ वंका दुष्ट दल ह्वै विकल काल,
काकोदर दुष्ट ऐसे देहि करि राजते।
संज्ञा हीन होति हीन अंग द्युति हीन अति,
पीन जे प्रथम गिरि हू सो गये साजते॥
सांग भय छाती नट साल ह्वै सु देवदत्त,
कढ़ाति न काढ़ो डाढ़ी मूंछ वहु लाजते।
भूलि जाति जुद्ध उद्धताई क्रुद्धताई जव,
काली के निसान घोर जोर धुन वाजते ॥३॥

तज्जत सुखानि अति रज्जत दुखित पीत,
लच्छत मुखानि दुष्ट प्रवल समाजते ।
भच्छाति सु अङ्ग उनमाद अङ्ग अङ्ग सिला,
पटक कपाल भँग करत न छाजते ॥

देवदत्त तत्त दुख वारि विनु नैननु सु,
छंडाति निसाके पुंडरीक सम भ्राजते ।
सचकित चारु हू तरफ़ आसि फेरे जव,
काली के निसान घोर जोर धुन वाजते ॥४॥

छंडाति गमन पाग मंडित अचलता,
सौहत्थन हथ्यार धरै अति अल साजते ।
आछिन कुरंग आछि आनन समच्छ अच्छ,
इच्छाति अनिच्छतु हृदय सुख साजते ॥
अजन अरन्य घोर चित्त रुचि आवै,
देवदत्त दुष्ट चित्त देह गेह भाजते ।
ताच्छिन खलिन्द ह्वै रहाति से मुनिन्द जव,
काली के निसान घोर जोर धुन राजते ॥५॥

घोर धुनि जोरि टूट मध्य तैं जवन गिरैं,
लच्छ खराड होत पुनि रेनु सम राजते ।
वच्छ थल फाटि ह्वै दुटूक पुर छार होत,
चिन्ता कृष्ण मारग विदाहे भ्राति काजते ॥

मुंडनि के झुंड अन्तरिच्छ उड़ि जात देव,

दत्त मानो उड़त विधुन्तुद समाजते ।

भूधर से अंग सव टूक टूक होत जव,

काली के निसान घोर जोर धुनि बाजते ॥६॥

\+ + + +

शिव पंचासिका (अप्रकाशित)

महाकवि देव की यह ५० श्लोकों की कृति शैवी भाव पूर्ण परम शान्त रस मई कविता है। जिसके अन्त में यह श्लोक है। यह पार्थिव लिंगार्चन विधि युक्त स्तोत्र ग्रन्थ मात्र है।

शैवी पंचासिकेयं विमल तरपदै देवदत्तेन भक्त्यां ।
शंभु प्रीत्यै नितान्त परम शिव मयी निर्मिता शुद्ध रूपं ॥
शैवं लिंगं प्रसृज्य प्रतिदिनं ममलं एन पठेद्यस्त ।
चित्ताऽशेष कामान सपदि शिव दत्तः पूरयित्वा त मन्यात् ॥

\+ + + +

साम्ब शिवाष्टकम् (अप्रकाशित)

पार्थिव लिंगोपासना के समान भाव युक्त जिस प्रकार कवि देव की रचना "शिव पंचासिका" है उसी प्रकार "साम्ब शिवाष्टक" भी है।

एकं उदित इहि कोटि विधि
सुमूल प्रकृतीय तनुस्थ उदार मम ।

सद्लिक चन्द्र गलित पीयूष
पदाम्बुज भक्त हतार्तिः ॥
श्री गिरिवर हिम भूधर तनया
प्रेम वशी कृत निर्गुणाम्बि वाचः ।
संतत मिह भव भीरु भिरधिकं
सांब शिवोहि नमस्कारणीयः ॥
सांब शिवाष्टकं मित्थमिदं
श्री देव विनिर्मितमरीत्या ।
या श्रणुयाच्च पठेदपि भक्त्या
वांछि माशु निजं सलभेद्धिः ॥

\+ \+ \+ \+

श्री नृसिंह चरित (अप्रकाशित)

यह कवि देव जी की श्री नृसिंहावतार-दृश्य-भाव-सूचक रचना छन्दों में है। जिसके पढ़ने से भक्ति रस का संचार होना सम्भव है।

दो०—गुरु गनपति सारदहिं उर, वान्दि सुभाव विचित्र।
देवदत्त कवि रचत अब, श्री नरसिंह चरित्र ॥१॥

\+ \+ \+ \+

क०—सूकर सरूप हरि हेम अछ हन्यो तब,
देवनि अधिक सुख दुंदुभी बजाई जू।

कनक कासिपु तासु अग्रज सुनत घोप,
रोप महँ डूब्यो सोक विथा उर छाई जू ॥
भ्राता को निजानि होति मानि अनुमान वड़ी,
रोदन विवस आँखें नीर भरि आई जू ।
काहे मोह थर थर कपन शरीर लग्यो,
भई जिय प्यारी ते फेरि हिय भाई जू ॥२॥

+ + + +

शिवाष्टक (अप्रकाशित)

महाकवि देव की शिवाष्टक नामक कृति अत्यन्त मनोहारिणी और शिव भक्तामर तोषिणी रचना है।

+ + + +

* भुजंग प्रयात *

हरं शङ्करं शंभुमीशं त्रिनेत्रं,
गिरीशं भवानी पतिं गौरि नाथं ।
जग दुःख नाशैक हेतुं दयाब्धिं,
महादेव देवं सुदेवं नमामि ॥१॥
शिवं दीन नाथं विभुं हर्ष गाथं,
जगन्नाथ नाथं मृडं सर्व नाथं ।
गिरीशं भवं योगिनाथं अरूपं,
महादेव देवं सुदेवं नमामि ॥२॥

प्रभुं वासुदेवं जगद्देव देवं,
त्व नाद्यंतदीनार्ति कालं मुनीशं ।
महा योगि वंद्यं महा योग गम्यं,
महादेव देवं सुदेवं नमामि ॥३॥

अभीष्ट प्रदं योगिनां वै मुनीनां,
सतां मोक्षदं योगि भिर्ध्येय रूपं ।
अनन्तं त्वनादिं जगत्पूज्य पादं,
महादेव देवं सुदेवं नमामि ॥४॥

\+ + + +

प्रज्ञान शतक (अप्रकाशित)

कवि देव जी ने जिस प्रकार "वैराग्य विलास" की रचना को है, उसी प्रकार यह परम शान्त भावोत्पादिनी रचना है।

जग में यह जीवन तो कवि, देव जू और कछू चितना भ्रमको।
इक सात्विक भाव धरो जिय में, जग घोर उपाधि भरो तुमको॥
गुरु मूरति आपने चित्त में धारि, सवाद लहो नित ही तुमको।
कर शंकर शक्ति के ध्यान की ओर लगाय ले चेतन बौडुमको ॥१॥

\+ + + +

मोह ओक सोक नहीं सोक मोक अवलोके को,
मेरे मन परी ये करम की आ राति है।

कैसे बुद्धि प्यारी सुकुमारी विनु औसुक लै,
छिन हूं न ता विनु हिये की पीर जाति है ॥
कीजे का उपाइ दिन राति ज्ञान झूगे नहीं,
सूगे प्रानप्यारी विनु जाति औ कुजाति है ।
हरि को सरन लीजे ज्ञान गान चित्त दीजे,
राति कौ हरन हारौ मुरारि फौराति है ॥२॥

\+ \+ \+ \+

जैसी करी करी कौरु द्रोपदा कों,
जैसी करी व्याध से अगाध अघरासी कों ।
दीनबन्धु कृपासिन्धु मोहू को करहु तैसी,
जैसी करी गनिका अनेक तमत्रासी कों ॥
जैसी करी अग्र कील पीपा नाम देव धना,
सदनारि दास औ कबीर मीरा दासी को ।
जैसी करी वारन कौं अजामेल तारन कौ,
जैसी करी प्रहलाद भूतल निवासी को ॥३॥

\+ \+ \+ \+

सागर सो भव देखि अथाह,
उछाह रह्यो न सु क्यों अवगाहिय ।
कोटिन भौंर बड़े भ्रम के लखि,
भारी अतंक दयालु कै पाहिय ॥

वार न पार मिलै कितहूँ भय,
लागि बड़ी गयो पारिहीं चाहिय ।
आपनी ओर निहारि हरे अब,
ज्यों त्यों हमें गहि बाँह निवाहिय ॥४॥

× × × ×

पातकी ह्वै पद कंज गहे निज,
गाति की कैसे कहें मलिनाई ।
तारन आप सदाँ बिनु कारन,
वारन व्याध कथा सुनि पाई ॥
कवि देव जू तारिय नाथ लखें,
भव सागर चित्त सदैव डराई ।
नातरु सिंधु प्रवाह में मो संग,
रावरो रूप न बूढ़े कन्हाई ॥५॥

\+ + + +

गुन ग्रामनि को जग में विसराम,
सुधाम सदाँ तव नाम जगै ।
सब कामनि देत जपै नित चेत,
अहेतहु जो जप जीह पगै ॥
सोई नाम धर्यो अभिराम हिये,
न कर्यो तप तामें प्रयास खगै ।

सब तारे न मोहि उधारो हरे,
तौ कहौ जन कौन की पाटी लगै ॥६॥

\+ + + +

करम हेरिया ने मोह पींजरा में जीव कीर,
करि कोह छोह तजिकें बसायो है।
पुन्य पाप ही सौं दैकैं अहंकार कीवो
दुसील पींजरा को द्वार अति सै मुदायो है॥
दै करि प्रमाद चुगो वादरु वाद के,
औ भाँतिक उन्माद नाद निंदित करायो है।
सोई सुक साधनि कराइ ज्ञान छैनी कलि,
खिरिकी खुलाइ ब्रह्म पद को चुरायो है ॥७॥

\+ + + +

लक्ष्मी दामोदर स्तोत्र (अप्रकाशित)

* शिखरिणी *

त्वदीयं दासत्वं सततममि याचे स करुणा।
प्रगर्ज्जत्संसारोदधि जनुतरंगोत्त्कट रूजः॥
यदीयं प्राप्त्या वै सुकुल मति हीनो पि कलशो।
भावातुल्य-स्तंशोषयति नितरांयामरजनः ॥१॥
दया दृष्ट्या दीनं सकल गुणहीनं भ्रम तमः।
समुद्रे पाठोनं सपदि जन मालोकय हरे॥

त्वदा लोक ज्योतिर्भरसमभिशुष्यत्तरुदधिः ।
जनः शीघ्रं वेगात्पतित परमानन्द जलधौ ॥२॥
प्रभो लक्ष्मी दामोदर कुरुलयं नेत्र तमसः ।
तव ध्याये पादद्वय मिति भवादि प्रविदरं ॥
परं तत्वं पूर्णं निखिल सुख सामर्थ्य निहितम् ।
यतोऽहं जानी यं वितरलघुतं ज्ञान ममलम् ॥३॥
कथं ते माहात्म्यं निगदितु महं स्वल्प धिषणं ।
प्रभुः स्यामं वेशार्चित पद महा मोह विकलः ॥
प्रवक्तुं यदि वाणी गुरु भुजग नाथादिक बुधाः ।
न शक्तास्तन्मह्यंदिकतु तव सायुज्य पदवीं ॥४॥
समौत्सुक्यं धत्ते विषय वशतो भक्ति रचला ।
न चा याति स्वामिन् वद वरद कुर्य्याम किमिह ॥
न या वच्छ्रीनाथाऽखिल घटित कर्म स्वयमितः ।
शरीरीत्वद्भावं मनसि परिधत्ते सुमतिमान् ॥५॥
यदा देवी लक्ष्मी सावै परम शक्तिर्विकृतिभिः ।
परित्यक्तावांछत्वपितुत्थं जगदुद्भूत कुतुकम् ॥
तदैव त्वंतस्या रचयसि मुदे विश्वमचिरं ।
गुणैर्माया विष्टो नट इव जगत्कौतुक विधिम् ॥६॥
गुणान्वक्तुं वाणीं न भवति सामर्थैक रसना ।
अतो ब्रह्मादीन्द्रा गणित मुनि जिह्वाग्र निलया ॥

अह्नो रात्रं नित्यं वदति बहुधा पद्य रचनैः।
न याता तत्पारं नर पशु रहं केशव कियान् ॥७॥

× × × ×

भवानी विलास (अप्राप्य)

यह भाव विलास से बढ़ा चढ़ा एक उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ है। इसको महाकवि देव जी ने दादरी* (जिला बुलन्दशहर) के राजा भवानीदत्त नामक वैश्य के चित्त विनोदार्थ रचना की थी। इसमें बड़ी योग्यता के साथ रसों का वर्णन है।

\+ \+ \+ \+

दो०—*श्यामा श्याम किशोर जुग, पद वन्दों जग वन्द।*
मूरति रस सिंगार की, सुद्ध सच्चिदानन्द ॥१॥
श्रीपति जोहि सम्पति दई, सन्तहिं सुमति सुनाम।
आदरीक अति दादरी, पति नृप सीताराम ॥२॥
सबलसिंह पति धर्म धुज, सीताराम नरेन्द्र।
ता सुत इन्द्र कुबेर सम, वैश्य सुवंश महेन्द्र ॥३॥

\+ \+ \+ \+

क०—*देव हरिहर वर देवता वर किधौं,*
सील सरवर नट वरम प्रमान हौ।

---

* भारतवर्ष में "दादरी" नाम के दो नगर हैं। एक को चर्खी—दादरी कहते हैं और यह गाँव ज़िला हिसार में है। दूसरी "दादरी" ज़िला बुलन्दशहर में है। इसकी तहसील सिकन्दराबाद और रेलवे स्टेशन "अजायबपुर" है। राजा भवानीदत्त दादरी तहसील सिकन्दराबाद के थे।

श्रुति को श्रवन दिव्य मारग के दृग करि,
नीके करनी के विधि विधान विधान हौ ॥
सीताराम नन्दन भवानीदत्त देवीदत्त,
कित्त के कलश सत्य धर्म के निशान हौ ।
सम्पति निधान साँझ भोर सासि भान महा,
मानि सन मानिबे की मान सनमान हौ ॥४॥

संभु भवानी की कृपा, विधि वानी के सत्त ।
हरि की सुभ वानी भई, है सुभ वानी दत्त ॥५॥
महादेव की सेव करि, ह्वै प्रसन्न मुनि देव ।
भूमि देव नर देव सब, सुखी देव गुरु देव ॥६॥
देव सुकवि ताते भयो, सुनि जस रस आसन्न ।
सत्त भवानी दत्त को, कहत कवित्त प्रसन्न ॥७॥
सब सुख दायिक नायिका, नामक गुणनु अनूप ।
राधा हरि आधार जस, रस सिंगार सरूप ॥८॥
भूलि कहत नव रस सुकवि, सकल मूल सिंगार ।
तोहि उछाह निर्वेद लै, वीर सान्त संचार ॥९॥
तातें रस सिंगार कहि, कहि हौं सातौं वीर ।
द्वै द्वै रस सँग तिहुन के, संयुत भाव शरीर ॥१०॥
भाव सहित सिंगार में, नव रस झलक अजत्न ।
ज्यों कंकन मानि कनक को, ताही में नवरत्न ॥११॥

निर्मल श्याम सिंगार हरि, देव अकास अनन्त ।
उड़ि उड़ि खग ज्यों और रस, विवस न पावत अन्त ॥१२॥

\+ + + +

स०—दूलह नौल नई दुलही उलही उर नेह की वेलि नवेली।
नैन दुहूँ के चले चित चैन चुके न रुके न झुके पट झीने ॥
रंग रली उर लीने उछाह, अली मुसकाइ चली परवीने ।
प्रेम की सम्पति दम्पति देवहि, लै हिय खोलि मिले रस भीने ॥१३॥

\+ + + +

रावरे रूप लला ललचानिये, जानी न काहू विकानिय ऐसी ।
है सत हीन सताई न तो तुम, संगति ते उतरी उत तैसी ॥
न्याउ निवेरो न हो यह नेह, को जानत हौ तूमहीं हम जैसी ।
देखिवे ही को भरै सिसकी, तिनकी खिसकी चरचा कहु कैसी ॥१४॥

\+ + + +

"बोलति है मुँह चंग भई इत, डोलति हौ उत चंग भई तू"

\+ + + +

"लाज ज्यों वाज चिरी झपटी, कपटी कुल के उर अन्तर कैंची"

\+ + + +

इति राय भवानीदत्त विनोदाय देवदत्त कवि विरचिते भवानी विलास शृंगार रस भाव स्वरूप वर्णन नाम प्रथमो विलासः ।

× × × ×

देव माया प्रपंच (अप्रकाशित)

महा कवि केशवदासजी ने जिस प्रकार विज्ञान गीता लिखा है उसी भाँति इसमें भी रूपकालङ्कार से सद्धर्म और माया का युद्ध दिखाया गया है, नट, नटी नैपथ्य, प्रवेश प्रस्थानादि हैं जिसे पूर्ण नाटक तो नहीं हाँ अर्द्ध नाटक अवश्य कह सकते हैं।

कलि प्रवेश

पूजत प्रेतनि डाइन के तिन, तीरथ खेतन खूंदतु आयो।
प्रीति रुठाइ प्रतीति उटाइ कै, ज्ञान गली गुन रूंदतु आयो॥
संगति के मति जाति सुनी, सुजनस्तुति को मुख मूंदतु आयो।
काल कला विकराल महा, तत्काल तहाँ कलि कूदतु आयो॥

\+ \+ \+ \+

बुद्धि सत्संग गृह प्रवेश

पावक में रासि आँच लगे न,
विना छत खांडे की धार पै धावै।
भीत सों भीत अभीत अभीत सों,
दुःख दुखी सुख सो सुख पावै॥
जोगी के आठहू जाम जगे,
अरु जामिन कामिन सो मन लावै।
आगिलो पाछिलो सोचि सबै,
कलु कृत्य करै तब भृत्य कहावै॥

\+ \+ \+ \+

प्रेम की पूरति नेम की मूरति छेम की छाँह छमा सँग लीने।

\+ \+ \+ \+

बुद्धि-विजय परमात्म स्वरूप लाभ

विश्व वसुधा विश्व मान वसुधा सी सुख—

सिंधु नव निद्धि ज्ञान वृद्धि बड़ भागिनी।

जोग की जुगति भव भोग की भुगति अघ,

ओघ की मुकाति मुनि लोगन विरागिनी॥

राका सी रुचिर राति ऐसी अनुकूल राज—

रानी सील सलिलच्छ सुतासी वरांगिनी।

सीता सी सलज्ज सीत करसी सलौनी चारु,

रमा सी रमनी सैल सुता सी सुहागिनी॥

\+ \+ \+ \+

मूढ़ कहैं मरि कैं फिरि पाइय, ह्यांजु लुटाइए भौन भरे को।

ते खल खोय खिस्यात खरे, अवतारु सुन्यो कहुँ छार परे को॥

जीवत तौ ब्रत भूख सुखौत, सरीर महा सुर रूख हरे को।

ऐसी असाधु असाधन की बुधि, साधन देत सराध मरे को॥

\+ \+ \+ \+

कुशल विलास (अप्रकाशित)

यह नव अध्यायों वाला नायिका भेद का अछूता ग्रन्थ है। इसमें उत्कृष्ट छन्दों में जितना सांगो-पांग वर्णन किया गया है वह

अन्यत्र किसी अन्य कवि की रचना में पाया जाना दुर्लभ है। यह ग्रन्थ फफूंद जिला इटावा के शुभकरन के पुत्र कुशलसिंह सेंगर ठाकुर के नाम पर कवि देव की रचना है।

"होति अनूढ़ा रस विवस, नवल छैल छवि देखि।
ऊढ़ा गूढ़ विमूढ़ मन, प्रेमारूढ़ विशेखि" ॥१॥

\+ + + +

देव* जिन्हें मिलि कैं रस हास प्रछन्न प्रकास निशा सुख सोई।

\+ + + +

बैठी कहा धरि मौनु भटू, रँग भौन तुम्हें विनु लागतु सून्यो।
चातक ज्यों तुम हीरनु देव, चकोर भयो चिनगी करि चून्यो॥
साँझ सुहाग की माँझ उदौ करि, सौति सरोजन को वन फूल्यो।
पावस तें चलि कीजिइ चैतु, अमावस तें चलि कीजिइ पून्यो॥

\+ + + +

लाज की गाँठि गई छुटि कैं, नहिं गाँठत काहू छुटै न छुटायें।
आठ हू जाम उतै उठि धावति, साठौ घरी सुठई है सुठायें॥

तद्भव भाव-विलास माह

* पाँय परौं पलिका न चढ़ौं, पलिका के चढ़े किमि धीर धरौंगी।
जा पलिका तें है भूमि भली, कवि गंग दै छाँड़ि मैं न्यारी परौंगी॥
मारौंगी पेट कटारी चवा किसौं, नाहीं तो ऊँचे अटा सौं गिरौंगी।
जोवन की रितु आवन दै पिउ, आपु तें आप मैं कण्ठ लगौंगी॥
अप्रकाशित "गङ्ग-तरङ्ग" से॥

ठान कुठान अठान ठनी, ठहकीली रहै गुरु लोग रुठायें।
ऐंठति ओंठ उठी अँगिया, अठिलात भिरै भुजमूल उठायें॥

\+ + + +

जाति विलास

कवि देव की सर्वोत्कृष्ट काव्य रचना का अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ है। यह रस विलास के टक्कर का ग्रन्थ भिन्न २ जातियों की स्त्रियों के विशद वर्णन में समाप्त हुआ है जिसमें द्रविड़, कलिंग, करनाट, सिन्धु, गुजरात, मरु, हून, करवीर, पर्वत, काशमीर, भूटान, सौवीर आदि आदि देश की महिलाओं का सौंदर्य लिख कर नायिका भेद का भी वर्णन किया है।*

\+ + + +

देवता दरस पति देवता सरिस देव,
एहि विधि औरो नहिं देव नर नागरी।
सहन सुभरी सन्त सुचि रुचि शील मन्त,
करि मल विमल मन सोभा सुख सागरी॥
चाहै मन मान को सराहै सदा प्रीति महि,
प्रीति को निवाहै रति रीति अति आगरी।
देवी देस द्रविड़ की सुन्दरी निविड़ नेह,
गुननु अनूप रूप ओपनि उजागरी॥

\+ + + +

---

* हमारे पास यह पूरा ग्रन्थ है।

करनाटक वधू

सोंधे भरी सूधी सी सुधानिधि सुधारी विधि,
सहज सुवासन की रासि लहियतु है।
जग मँगे वसन सुरंग रंग पगे अंग,
मदन तरंगनि के रंग चाहियतु है॥
बोलनि विलोकनि चलनि चतुराई चारु,
ताई सुघराइन की रीझि रहियतु है।
प्रेम परिपाटी रूप जोवन की पाटी पढ़ी,
देव दुति सटी करनाटी कहियतु है॥

\+ + + +

करवीर वधू

नासिका कीर लकीर से नैननि, तीर से छांड़ति है पिक वैनी।
भौंर अभीरन भीरनि भीतरु, भौंर सुभाइ उभै रस दैनी॥
धीरनु देव अधीरज होतु, चितौनि चितौत अधरिज पैनी।
पीर हरै करवीर की कामिन, छीरज से मुख नीरज नैनी॥

\+ + + +

काव्य रसायन (अप्राप्त)

शब्द रसायन अथवा "काव्य रसायन" महाकवि देव की गुरुतर रचना का ग्रन्थ है। पदार्थ निर्णय, रस निर्णय और शृंगार-निर्णय आदि आदि का वर्णन करते हुए इस ग्रन्थ में रस-मित्र और रस-शत्रु का भी दिग्दर्शन कराया है।

रस निर्णय

छप्पै—रस अंकुर थाई, विभाव रस के उपजावन,
रस अनुभव अनुभाव, सु सात्विक रस झलकावन।
छिन छिन नाना रूप रसनि, संचारी उझकै,
पूरन रस संयोग विरह, रस रंग समुझ कै॥
ये होति नायिकादिकन में, रत्यादिक रस भाव पट्।
उपजावत शृंगारादि-रस, गावत नाचत सुकवि नट॥

\+ + + +

सरस वाव्य, पद अरथ ताजि, शब्द चित्र समुहात।
दधि, घृत, मधु, पायस तजत, वायस चाम चवात॥

\+ + + +

भाषा प्राकृत संस्कृत, देखि कविनु को पंथ।
देवदत्त कवि रस रच्यो, काव्य रसाइनु ग्रन्थ॥

\+ + + +

ऊँच नीच तन कर्म वस, चल्यो जात संसार।
रहत भव्य-भगवंत यश, नव्य काव्य सुख सार॥

\+ + + +

बालम विरहु जोहि जान्यो ना जनम भरि,
वरि वरि उठे ज्यों ज्यों वरसे वरफ राति।
बीजनु डुलावति सखी जन त्यों सीत हू में;
सौति के सराप तन तापनि तरफराति॥

देव कहैं साँसनु ही अँसुवा सुखात मुख,
निकसै न बात ऐसी सिसकी कै सरफराति ।
लोटि लोटि परति करोंटि खटपाटी लै लै,
सूखे जल सफरी ज्यों सेज पर फरफराति ॥

\+ + + +

कृति सामञ्जस्य

"जाति विलास" और "रस विलास" में अधिक समानता है। "जाति विलास" पहिले और "रस विलास" पीछे से बना प्रतीत होता है। "शब्द रसायन" और "सुख सागर तरंग" में अधिक अन्तर नहीं है पहिले "शब्द रसायन" और पीछे संग्रह-ग्रन्थ "सुख सागर तरंग" बना है। इसी प्रकार "भाव विलास" और "रस विलास" में इतना अन्तर नहीं है; यद्यपि दोनों में न्यूनाधिक्य प्रौढ़ कविता-लक्षण पाये जाते हैं परन्तु दोनों में इस प्रकार पार्थक्य हो गया है कि दो भिन्न ग्रन्थ बन गये हैं।

"भाव विलास" के अनन्तर "अष्टयाम" की रचना है। पहिला दूसरे से अधिक बढ़ा चढ़ा काव्य ग्रन्थ है तथापि "रस-विलास" से अधिक उसमें उत्कृष्ट रचना नहीं मिलती।

"भाव विलास" से "भवानी विलास" की कविता कहीं मँजी हुई और प्रौढ़ है इसमें जितनी रोचकता के साथ रसों का वर्णन है यह देव कवि के परम रसज्ञ होने का साक्षी है।

"सुजान विनोद" और "प्रेम चन्द्रिका" दोनों में प्रेम का वर्णन है। इस ग्रन्थ में यही सार निकाला है कि प्रेम की लगन के सामने जप, तप करना सब व्यर्थ है।

"सुजान विनोद" और "भवानी विलास" एक सदृश काव्य-ग्रन्थ हैं जिस प्रकार "सुजान विनोद" में षट् ऋतुओं और नायिकाओं का भेद विशद रूप से वर्णित है उसी प्रकार "भवानी-विलास" की रचना है। "प्रेम तरंग" "शब्द रसायन" के आकार प्रकार का ग्रन्थ है। "भवानी विलास" के समान ही "कुशल विलास" की रचना की गई है यह भी नायिका भेद का अनुपम ग्रन्थ है और "भवानी विलास" के सादृश्य "देव चरित्र" रचना विदित होती है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

"राग रत्नाकर" में समस्त राग रागिनियों का वर्णन है यह यद्यपि स्वतंत्र ग्रन्थ है परन्तु इसके अनेक पद ज्यों के त्यों "माधव गीत" में आ गये हैं। अतः कौन पहिला और दूसरा है यह भेद करना कठोर भेदिया का काम है। राग रत्नाकर और रागमाला में भाव सादृश्य है। "प्रेम चन्द्रिका" में नायिका भेद का अनूठा वर्णन है यह पुस्तक राजा उद्योतसिंह वैश वंशीय के पुत्र मरदनसिंह के चित्त-विनोदार्थ रची गई थी।

इसी प्रकार "पावस विलास" और "भाव विलास" की तुलनात्मक रचना मानी गई है परन्तु मुझे "पावस विलास" खोज करने पर भी न मिला अतएव यह समता संदिग्ध ही है।

"नखसिख" नाम से प्रसिद्ध की गई है, कदाचित् ही कोई देव कवि का "नखसिख" संसार में मिल सके। अधिक सम्भव है वह किसी रचना का ही अङ्ग न हो। स्वर्गीय श्री ला० कन्नोमलजी ने जिसका नाम "अष्टैयां" लिखा है वह अष्टयाम के अतिरिक्त कोई अन्य अथवा भिन्न कृति नहीं हैं। इस अष्टयाम को ही "अष्टैयां" कहते हैं इसमें लेखक का लिपि दोष है न कि किसी भिन्न ग्रन्थ की ओर लक्ष्य है। "भानु विलास" और "भवानी विलास" एक ही के दोनों अशुद्ध और शुद्ध नाम हैं कदाचित् यह "भाउ विलास" न हो बिना उदाहरण के निर्णय करना कठिन काम है। क्योंकि 'व' और 'उ' के परिवर्त्तन में नाम आ गया है। अतः उसके अभाव में यही धारणा ठीक होगी। "सुमाल विनोद" अथवा "सुमिल विनोद" लिपि-लेखक के प्रमाद से एक के दो पृथक् नाम हो गये प्रतीत होते हैं। "सुमाल विनोद" और "सुमिल विनोद" का कुछ भावार्थ भी ऐसा हृदयङ्गम नहीं होता कि जो कुछ गुद-गुदी उत्पन्न करे अतः यह "सुजान विनोद" ही है इससे भिन्न कुछ नहीं माना जा सकता।

"नीति शतक" निर्विवाद स्वतंत्र ग्रन्थ हो सकता है परन्तु उसके अलभ्य होने में भी किसी को शंका नहीं है अतः जिसकी लोप संज्ञा है उसके लिये क्या कहा जावे। मेरे पास देव कवि के नीति के फुटकर दोहों का संग्रह है परन्तु नाम नीति शतक नहीं।

"पावस विलास" और देव कवि का "माधव विलास" अथवा "माधव गीत" में आये हुए "गोपी विरह" नामक अध्याय के ही दो भिन्न नाम हैं क्योंकि दोनों में अति समानता है।

"वृत्त विलास" कोई नया स्वतंत्र काव्य हो परन्तु मेरे संग्रह में नहीं आया अतः उसकी तुलना करना कठिन है। "राधिका विलास" "श्याम विनोद" कदाचित् "माधव विलास" के ही भीतर आ जाते हैं। "वृत्त मंजरी" काव्य-रस-पिंगल छपने पर एक समान से ही निकलेंगे। मैं "वृत्त विलास" या "वाक् विलास" अथवा "वृत्त मंजरी" को शीघ्र ही प्रकाशित करने वाला हूँ ईश्वर इस संकल्प को पूरा करे।

स्वर्गीय श्री भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी द्वारा संकलित "सुन्दरी सिन्दूर" में कवि देव के चुनीदा चुनीदा कवित्तों का संग्रह है वह "सुख सागर तरंग" से समता लेता है अतएव उसकी भाँति यह भी स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। इस-लिये यह देव कवि की स्वतंत्र रचना नहीं हैं!

स्वभाव

महा कवि देव बड़े निरभिमानी, उदार वृत्ति के सदाचारी* एवं रसिक पुरुष थे; परन्तु वह स्वात्माभिमान का हनन भी नहीं सह

---

* मिश्रबन्धुओं ने इनके चरित्र को सदाचार रहित माना है। क्या केवल रसिक होने से ??

सकते थे। दोनों प्रकार के उदाहरण इस सम्बन्ध में पाये जाते हैं जो उन्हीं के स्वरचित छन्दों से व्यक्त होते हैं।

\+ + + +

"या साहित्य समुद्र को, चढ़नि चुपायो पार।
हम से ओछे कविनु को, तहाँ कहाँ अधिकार॥

(भाव विलास)

\+ + + +

सूर सूर, तुलसी सुधाकर, नछत्र केसो,
शेष कविराजन को जुगुनूं गिनाइ कैं।
कोऊ परि पूरन भगति दिखराओं अब,
काव्य-रीति मोसन सुनहु चित लाय कैं॥
देव नभ-मंडल समान है, कवीन मध्य,
जामें भानु, सित भानु, तारागन आय कैं।
उदै होत अथवत, चारों ओर भ्रमत पै,
जाको ओर छोर नहिं परत लखाय कैं॥

(देव)

\+ + + +

सिद्धान्त-धर्म

बहुधा कवि देवजी को कहा जाता है कि वह हित हरिवंशजी के सम्प्रदाय के थे और उन्हें उनके १२ वों शिष्यों में मुख्य होने

का सौभाग्य प्राप्त था। परन्तु उनके विचारों पर सूक्ष्म दृष्टि से मनन करने पर यह बात चारों कौने ठीक नहीं वैठती। उन्होंने अपने काव्य ग्रन्थों में कहीं भी यह प्रकट नहीं होने दिया कि वह अमुक इष्ट की आराधना करते थे। उन्होंने समस्त प्रमुख साम्प्रदायिक देवताओं का एक समान उतनी ही भक्ति भावना से आदर सम्मान सूचित किया है कि जितना उस इष्ट का उपासक करता है इसका प्रमाण उनके ग्रन्थ और मंगलाचरण हैं। मेरे विचार से वह "भागवत धर्म" के मानने वाले थे कि जो किसी धर्म की निन्दा स्तुति अथवा पक्षपात में नहीं पड़ते किन्तु "सर्व देव नमस्कारं केशवं प्रतिगच्छति" वाले सिद्धान्त के अनुशीलन करने वाले हैं। इसलिये श्री हित हरिवंशजी की ही शाखा में खींच कर सीमित कर देने में कोई प्रखरतम प्रमाण अथवा आधार नहीं है। संभव है भारतेन्दु बाबू हरिश्चद्र के लिखने के आधार पर यह धारणा हो गई हो, क्योंकि "सुन्दरी सिन्दूर" के ऊपर ऐसा ही लिखा है।

ज्ञान तथा अनुभव

महाकवि देव बहुधीत और बहुश्रुत एवं प्रकृति पर्य्यवेक्षण में बड़ी सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले मनुष्य थे। इनमें बहुज्ञता का इतना बढ़ा चढ़ा बल था कि वह समस्त काव्य रीतियों पर बड़ी दृढ़ता और योग्यता से आचार्यवत् सफल प्रयत्न हुये हैं। अद्भुत चमत्कारिणी उक्तियाँ, लोकोक्तियाँ, अन्योक्तियाँ एवं स्वाभावोक्तियों

तथा शब्द, अर्थ, रस, और अलंकारिक ब्रजभाषा की ध्वनियों की इतनी प्रचुरता इनकी कविता में पाई जाती है कि उसमें सर्वोत्कृष्ट ध्वनि व्यंजक काव्य का आनन्द प्राप्त होता है। उसमें इतने चारु रूप एवं अधिकता से अनेकानेक भावों को संकलित किया गया है कि एक महान कवि के कर्त्तव्य के नाते उनका उदात्त-पद हो जाता है। जो अन्य कवियों को प्रयत्न करने पर भी दुष्प्राप्य ही रहा !

महाकवि देव एक महान लोक-संग्रह-कुशल पुरुष थे इन्हें समस्त लौकिक क्या पारलौकिक प्रत्येक प्रसंग कर–वदरिवत् थे और जिस विषय का वर्णन किया है वह सांगोपाङ्ग हस्तामलक-वत् बड़े सौन्दर्य शीलन को सम्मुख रख कर किया है उसमें शैथिल्य का स्वप्न है। यदि अनमेल विषयों पर कविता की गई है तो उसको वगमेल होने से इस युक्ति से बचाया है कि विषय अरोचक होने के स्थान में रुचिपूर्ण, प्रसाद और चमत्कार गुण-युक्त हो गया है। शब्द की कसौटी हृदय है इसलिये उन्होंने कर्ण-दलाल के हाथ में कोई कटु शब्द रत्न ही नहीं दिया जो उनके ज्ञान पूर्वक अनुभव का द्योतक है। इन्हें भिन्न-भिन्न समाज, संगत और सम्प्रदाओं का पूर्ण अनुभव था। यह दरवारी कवि थे। सदैव उचित सम्मान और ठाठ वाट से जीवन व्यतीत ही करना नहीं जानते थे किन्तु सारग्राही और बात की तह पर भी पहुँचते थे। महाकवि सुन्दर की भाँति इनका मुसलमान बादशाहों में उसी प्रकार सन्मान था कि जैसा उन्हें हिन्दू नरेशों से प्राप्त था। यह उनके अनुभव के ही कारण हो सका था। वह विमति विध-

र्मियों में सहमति और सुधर्मियों की भाँति रहना जानते थे। कवि देव के गुणों का आलोक उनके काव्य-ग्रन्थ हैं। उनमें जिस प्रतिभा से काम लिया गया है वह उनके परिपक्व ज्ञान और सुदृढ़ अनुभव का ज्वलन्त प्रमाण है।

काव्य गुणादर्श

यह नहीं कहा जा सकता कि उनका काव्य सर्वांश में अनौचित्य रहित है। परन्तु जो अनूठी और हृदयग्राही एवं मनोरम काव्य-प्रक्रियायें इनकी हैं वह पढ़ने में ही आती हैं परन्तु वर्णन से परे हैं। यह कि इनका काव्य शृङ्गार-रस में आचूड़ान्त मग्न है, भाव भेद, रस भेद, और प्रेम के निराले पंथ ने इन्हें बड़े-बड़े उड़ान झल्ल भरने का साहस दिया था परन्तु फिर भी वह एक विशुद्ध प्रेम का वर्णन है उस रस को अनरस और भाव को कुभाव-भेद युक्त नहीं होने देने का श्रेय देवजी को ही है। उसमें सदुपदेश भरा पड़ा है। उनके परम रसिक होते हुये भी काव्य रचना में उदासीनता भाव, राग-माया, वैराग्य और आत्मज्ञान के वर्णन करने में कहीं भी नैराश्य पूर्ण शिथिलतावश कभी सकुचे नहीं और अपने पांडित्य के बलबूते प्रत्येक वर्णन यथा सम्भव यथा स्थान सार्थक भाव से रचना में लाये हैं। उन्होंने वृक्षों, ऋतुओं का अन्योक्तियों द्वारा वर्णन करके मानव जाति को सद्गुण-सम्पन्न कर्त्तव्यपरायणता का गहरा ज्ञान कराया है और कवि-कर्त्तव्य को अनमोल क्रम से निबाहा है। जहाँ जिस

विषय का वर्णन है वह सजीव वर्णन है और उसका जीवित दिग्दर्शन दर्पण की भाँति उज्ज्वल है।

बड़े बड़े ऊँचे भावों का रूपक रच कर जिस युक्ति से उन्होंने अमीरी वू खू का उद्बोधन कराया है वह निःसन्देह सर्वोपरि-श्लाघ्य है। इन्होंने अलभ्य और अनूठी उक्तियाँ और भावनाओं को एक स्थान पर जुटा कर हृदय पर रस, माधुर्य एवं सहृदयता की चोट देने वाली अवर्जनीय भावयुक्त सच्ची भावना से कविता की है कि जिसके पढ़ने से मनुष्य के हृदय पर गहरा प्रभाव और गुदगुदी एक साथ उत्पन्न होती है। यह महा कवि देव के ही बाँट में आया था कि नायक और नायिकाओं के प्रभुत्व का वर्णन करके अपने सब आश्रयदाताओं के खिलौने बने रहना अनुपम काव्य गुणादर्श के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। आश्रयदाता की मनोवृत्ति का मनन करके अनुकूल काव्य रचना कर काव्य भंडार को नूतन उपमाओं और भाव-भंगी से भरित-पूरित एवं परिष्कृत करना, साथ ही ब्रज भाषा को श्रेष्ठ आलंकारिक भाषा से सौभाग्यवती बनाना मानों इन्हीं के हिस्से में आ पड़ा था। इन्हें इतना भाषा-गौरव प्राप्त था कि उनकी सर्वत्र आचार्यता प्रमाणित होती है। गुण, लक्षण, ध्वनि, भाव, व्यंजना, वृत्तिपात्र, रस इतने सबल-भाव-युक्त काव्य में लक्षित किये हैं कि प्रत्येक विषय का मानों कवि ने चित्र खींच दिया है। कवि देव की कविता में चरित्र-चर्चन और चित्रकार का चित्र-चित्रण एक समान सा है। उनका काव्य

यमक, अनुप्रास, भाव, रस, प्रसाद, माधुर्य, समाधि, राग, कान्ति, औदार्य, समता, शब्दार्थ, व्यंजना, अर्थ व्यक्ति, सुधर्मिता, सौष्ठवता, पर्यायोक्ति, तिरस्कृत वाच्य, काकु, ध्वनि और व्यंजनादि लक्षण युक्त उत्कृष्ट भाव पूर्ण हैं। महा कवि देव की प्रतिभा रस विलास, सुजान विनोद, भवानी विलास और भाव विलास, जो शब्द-रसायन ग्रन्थ हैं, उनसे पाई जाती है।

काव्य-दोष दिग्दर्शन

कवियों की सूझ निराली और व्यापक होती है। यद्यपि वह समस्त काव्य सामग्री विश्व-नाट्य-शाला से लेते हैं। परन्तु अपने अपने दृष्टि कोण, वर्णन की शैली, एक बार कथित विषयको अनेक बार अनेक रंग-ढंग से कहना, यदि किसी को आता था तो कवि को ही आता था। कवि मुक्त पुरुष है और चित्रकार बद्ध पुरुष है। एक रचना में स्वतंत्र है तो दूसरा पूर्ण परतंत्र है। रचना में रचना दिखाना दोनों का ही ध्येय होता है परन्तु चित्रकार आकार प्रकार में न्यूनाधिक्य करने से चित्र की मौलिकता में कृत्रिमता रच बैठता है परन्तु कवि टेढ़ी-सीधी, ऊँची-नीची शब्द रेखाओं में स्थूल का सूक्ष्म और सूक्ष्म का स्थूल एवं सूक्ष्म का सूक्ष्मतम वर्णन करने में ही अपनी रचना कौशल की छाप बैठाता है। कवि बहुधा इन्हीं कर्त्तव्यों के कारण अनौचित्यचर्या में घूम जाते हैं और यही उनका काव्य दोष अव्यापक दृष्टि वालों को दृष्टिगोचर होता है। अन्यथा कवि-रचना सर्वथा निर्दोष होती

है। वह तो प्रकृति का चित्रकार है। प्रकृति जब विकृति रूप में पहुँच जाती है तो उसका कोई वाह्य-नियम अथवा परिभाषा नहीं की जा सकती। वह प्रकृति की भाँति कैसी भी रचना हो मनो-मोहनी ही प्रतीत होती है। कवि फल, फूल, पत्ते, लता, गुल्म, पशु, पक्षी आदि की उपमायें सर्वाङ्ग सुन्दरी नायिका में घटाते हैं। ऐसा करके मानों सौन्दर्य मूर्ति बनाते हैं अथवा जड़ को चैतन्य करते हैं। परन्तु चित्रकार का इतना प्रतिबद्धाधिकार है कि वह चित्र की रूप रेखा घटाते-बढ़ाते ही अथवा उसे टस से मस करते ही चित्र की वास्तविकता को खो देता है। परन्तु जो दोष महा कवि देव की कविता में आगये हैं कि जिससे उनकी दाक्षिण्य पूर्ण कविता में यत्किंचित जो प्रभाव पड़ा है, उसे साहित्यानुरागी इस प्रकार कथन करते हैं—

"इधर के नुक़ते उधर अगर हैं, हमारे दीवां में क्या ख़लल है।
तयूर माने में जो है उल्फ़त, वहम वो दाने बदल रहे हैं॥"

*(१) इनके तुकान्त कहीं-कहीं बड़े बे तुके हैं कि जिनका कोई अर्थ नहीं होता।

---

* यह आपत्ति मिश्रबन्धु विनोदकार की की हुई है कि देवजी ने "चाड़िली" और "रूंज" निरर्थक पद रक्खे हैं। यद्यपि इसका दोष परिहार कभी फिर किया जावेगा परन्तु इस शब्द को तो सूरदासजी और विहारी कवि ने भी भावपूर्ण समझकर अपनाया है। शब्द सर्वथा सार्थक है निरर्थक नहीं। यथा—

(२) शब्दाडम्बर अधिक हैं और कहीं-कहीं तुकान्त रहित काव्य है।

(३) टेढ़े-मेढ़े तुकान्त हैं जिनका प्रयोग नवीन है।

(४) विषय-वर्णन अनौचित्य भी यत्र-तत्र पाया जाता है।

(५) शब्दों की तोड़-मरोड़ अधिक की गई है।

(६) कहीं-कहीं काव्य में अश्लीलता भी पाई जाती है।

(७) इनकी कवितामें विहारी की भाव-छाया ही नहीं प्रतिविम्बित होती किन्तु कहीं-कहीं तो ज्यों के त्यों पद आगये हैं।

(८) कहीं-कहीं एक ही ग्रन्थ में वही पद दुबारा और कहीं-कही चरण का चरण रक्खा हुआ है।

प्रकृत मनुसरामः अन्य दोष भी साहित्य-सेवियोंकी दृष्टि में हैं जो अधिक विषयान्तर होने से इस विषय को यहीं समाप्त करना ही समुचित है।

राग धनाश्री

"को गोपाल × × × ×। तुम सों संदेशो × × × ×।

अपनी "चांडि" आनि उड़ बैठ्यो भँवर भलो रस जानि॥

कै वह केलि वढ़ी × × × × यहां "चांडि" का अर्थ "लालच" है।

इसका स्त्रीलिंग "चांडिली" ही बन सकेगा जिसका अर्थ लोभिन होगा।

"कुच गिरि चढ़ि अति थकित ह्वै, चली डीठि मुँह-चाड़ि। फिरि न टरी परिये रही, गिरी चिबुक की गाड़ि (विहारी) यहाँ मुँह-चाड़ का अर्थ मुँह-लोलुप है। चाड़िली—चाड़ पर्याय वाची है। केवल लिंग भेद है।

रचना सौन्दर्य

महाकवि देवजी की रचना में, दैनिक एवम् सर्वसाधारण व्यवहार में आने वाली कहावतों एवं पहेलियों के आधार शिक्षा-प्रद-वचनिकाओं के सन्निवेश होने से उनकी रचना का सौन्दर्य और अर्थ-गौरव तथा पद-लालित्य कहीं अधिक बढ़ गया है। चमत्कृत और प्रसाद-गुण-पूर्ण उपमाओं के योग से, काव्य-सौष्ठव अत्यन्त सरस-भाव-युक्त मानव-चित्त को प्रासादित करने वाला और युक्तयुक्तिपूर्ण रचनामय होने से सब जगह जग-मगाती हुई रत्नोपम औषधि समान विद्यमान है। प्रगाढ़-कवित्व-शक्ति, हृदय को क्षुब्ध करने वाली मनोहर शैली, अनोखा-प्रबन्ध-आयोजन, शब्दाडम्बर और व्यर्थ के वाह्याडम्बर रहित होने से सर्व-प्रिय एवं अपूर्व-अनुभव की झलक युक्त, चटकीले, परमोत्कृष्ट और विस्तारपूर्वक जिस उत्तमतासे वर्णित विषय को अवगाहन किया है वह इनकी ही प्रौढ़-मेधा शक्ति का काम था।

इनकी काव्य-दृष्टि इतनी पैनी थी कि जहाँ जिसका वर्णन किया है नितान्त सर्वाङ्ग पूर्ण है। रस विलास, जाति विलास, और सुजान विनोद के पाठक प्रत्यक्ष दर्शनवत् उपरोक्त कथन की पुष्टि में उक्त प्रशंसनीय ग्रन्थों के अनुशीलन से रसावगाहन कर सकते हैं। यह इतनी चित्ताकर्षक रचनायें हैं कि जिनको यदि अनुप-मेय कहें तो क्या अत्युक्ति है ? इनका काव्य इतना लज्जा रहित नहीं परन्तु फिर भी विषय-वर्णन के समय इन्होंने कुछ उठा भी

नहीं रक्खा। बहुधा कवि गण नायिका के केवल-रूप का अधिक वर्णन करते हैं परन्तु इन्होंने अपनी नायिका को वस्त्रावेष्ठित वर्णन किया है। मुग्धा के भेद वर्णन करने में कलम तोड़ दी है। प्रत्येक पद्य भिन्न-भिन्न भावों से भरे हुये छलक रहे हैं। मानव विचार धारा की पराकाष्ठा से संगम करते हैं। पद्यों की प्रकृष्टता जितनी इनकी रचना में है मुझे इतनी अन्यत्र किसी कवि के काव्य में, सकौशल-वर्णन करने में शृङ्खलावद्ध नहीं मिली; जो इनकी अभूत-पूर्व सूझ के साथ पद्यों की उत्कृष्टता में भरे हुये विचार-विनिमय से कई गुनी हो जाती हो। अनुप्रास का प्रयोग केवल सर्वोत्कृष्ट रूप से यही कर सके हैं। शेष कवि इनसे पीछे और फीके हैं। विलक्षण तुकान्त जितने इनके काव्य में पाये जाते हैं अन्य कवि-कृतियों में ढूँढ़े नहीं मिलते। सुहावनी व्रजभाषा यद्यपि कहीं कहीं शब्दार्थ काठिन्य से नारि-केलि-फल समान हो गई है। परन्तु स्मृति-बल, उपस्थित-प्रज्ञानुसंधान, आशु स्फूर्ति, एवं उपालम्भ भी कहीं कहीं बड़े नुकीले और चुटीले हैं।

"गूजरी ऊजरे जोवन को, कछु मोल कहो दधि को तब देहौं।
'देव' अहो इतराव न होइ, नहीं मृदु बोलनि मोल बिके हौं॥
मोल कहा! अनमोल विकाहुगी, ऐंचि जवै अधरा रसलैहौं।
कैसी कही! फिर तो कहु कान्ह!! अभै कछु हौंहुँ कका-कि-सौ कैहौं॥

काव्य शील गुण वर्णन

इनकी रचना सर्वांश में शील, गुण सम्पन्न है। नायक और नायिका की प्रेम-तल्लीनता का चित्र मुग्धाओं में खींच कर प्रेम

को अछूता रूप दे दिया है। संचारी भाव के साथ साथ 'छल' और मूर्च्छावस्थाके अन्तर्हित मरण का दिग्दर्शन, नव रस का काव्य स्वरूप और आठों का नाटक में वर्णन, उसी भाँति केवल अलङ्कारों का ही विवेचन कर, काव्य गुण को द्विगुणित कर दिखाया है। रसों की अलौकिकता और लौकिकता, प्रछन्न और प्रकाश दोनों प्रकार के शृङ्गारों की विभेदता, संयोग और वियोग की परमावधि पर्यन्त पृथक् पृथक् दश दश दशाओं का दिग्दर्शन कराते हुए चार नायक और ३८४ नायिकाओं के विशद विभेद कह डाले हैं। मुग्धा की १३ भेद, दशावस्थायें और तीन मानों के वर्णन करने में कुछ उठा नहीं रक्खा। सवैया और घने घनाक्षरी छन्द मनोरम हैं। ऐतिहासिक वर्णन, लीला, हास, रास, विलास, जिस सूक्ष्म परन्तु दिव्य दृष्टि के साथ कथन किये गये हैं वह वर्णनातीत हैं। प्रौढ़ा में प्रेम की हीनता और पाँच प्रकार के प्रेम की परमोत्कृष्टता दिखलाते हुए सानुराग-प्रेम का समुज्ज्वल वर्णन किया है। पूर्वानुराग, गूढ़ागूढ़ शृंगार का तीनों नायिकाओं में जिस चातुर्य से व्यवहार दिखलाया है वह कवि देवजी की ही कुशाग्र बुद्धि का द्योतक है। प्रेम का शुद्ध-स्वरूप और प्रेम-तत्व का जितना मधुर एवं स्तुत्य वर्णन इन्होंने किया है वड़े-वड़े वैष्णव-ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। नायिका भेद के वर्णन में इन्होंने परम कौशल प्रदर्शन किया है जिसमें किसी कवि की तुलना नहीं की जा सकती।

मेरे गिरधारी गिरि धर्‍यो धरि धीरजु,
अधीर जानि होहु अंगु लचकि लुरक जाय।
लाड़िले कन्हैया, बलि गई बलि मैया,
बोलि ल्याऊँ बल भैया, आय उरपै उरकि जाय॥
टोकि राहि नेकु जौलौं हाथ न पिराय देखि;
साथु सँगु रीति अँगुरी ते न बुरकि जाय।
पर्‍यो ब्रज-बैर बैरी बारिद-वाहन वारि,
वाहन के बोझ, हरि-बाँह न मुरकि जाय॥

भाषा परिचय

महाकवि देव की रचना में शुद्ध ब्रजभाषा और पूरबी लटक है। बहुधा उन्हीं मुहावरों का उत्कट प्रयोग पाया भी जाता है कि जो पचार और भदावरी भाषा में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त देश, काल, और अवस्थानुसार इनके वाक्य फार्सी और उर्दू भाषा मिश्रित भी पाये जाते हैं। इन्होंने सुगठित प्रौढ़-ब्रजभाषा संस्कृत-मिश्रित लिखी है। भ्रंश, अप और अप-भ्रंश शब्दों की भी कोताई नहीं हैं। संस्कृत मिश्रित प्राकृत डिंगल और पिंगल भाषा के भी शब्द आ गये हैं। इन्हीं अथवा ऐसे ही शब्दों के प्रयोगों ने कहीं-कहीं भाषा अर्थकारों को अस्पष्ट विदित हुई है परन्तु ऐसा है नहीं। कहीं-कहीं नये शब्दों के भी आप उद्गम-स्थान बन गये हैं और ऐसे अनेक नये टकसाली शब्द इनकी रचना में पाये

है। इतनी बड़ी अवस्था का प्राप्त करना कोई आश्चार्य* की बात नहीं विशेष कर उस दशा में जब कि उनका स्वहस्त लिखित ज्योतिष ग्रन्थ इस बात का साक्षी है। अवस्था की प्राप्ति एक नैसर्गिक प्राप्ति है। "आयुर्विद्या यशो वलम्" ।

अर्थात् आयु, विद्या, यश और बल विधि की रचनायें है।

किम्बहुना यह तो मानना ही पड़ेगा कि जिस सम्वत् में उन्होंने ज्योतिष ग्रन्थ में निम्न लिखित श्लोक लिखे थे वह उस मिती तक तो जीवित ही थे कि जिसे आशंका अथवा भ्रम नहीं कहा जा सकता।

\+ + + +

"ग्रह भाव प्रकाशाख्यं शास्त्र मेतत्प्रकाशितं।
जगद्भाव प्रकाशाय श्री पद्म प्रभ सूरिभिः॥ १७०॥

इति श्री तिलव सूरि विरचितं भुवन दीपकं समाप्तं।

\+ + + +

---

* दीर्घ-जीवी मनुष्यों की इन दिनों भी कमी नहीं। हम आये दिन ऐसे समाचार पढ़ते हैं कि बड़ी अवस्था के मनुष्य विद्यमान हैं और अब अवस्था प्राप्त कर पंचत्व को प्राप्त हुये हैं। ता० २८ अगस्त सन् ३४ के नवयुग में समाचार पढ़ा था कि "एक वृद्धा १६० वर्ष की अवस्था प्राप्त कर टांडा वावली जिला मुरादाबाद से नश्वर कलेवर छोड़ कर पुनर्जन्म के लिये गई है।" ऐसी दशा में १०० वर्ष पहिले तो अल्पायु कम होते थे। आज की तिथि में भी कुम्हेर राज्य भरतपुर में वैद्य मुन्नीलालजी १०९ की आयु के जीवित हैं। यह संस्कृत के अच्छे पंडित और उत्तम वैद्य हैं परन्तु कुछ ऊँचा सुन कर ठीक ठीक बात चीत कर सकते हैं।

इस श्लोक के नीचे महाकवि देवदत्तजी ने निज निर्मित यह श्लोक लिखा है—

\+ + + +

"भौजंगी तिथिनेत्र दन्ति शशिभिश्श्रीमत्शुभे संमिते
वर्षे विक्रम भास्करा दिह गते, मासोत्तमे श्रावणे।
राकायां भृगुवासरे विलिखितं सम्यक्त्व पाठाय च,
श्री म.ोक्षित देवदत्त कविना शास्त्रं जगद्भासकं॥"

× × × ×

इसके पश्चात् दूसरा ज्वलन्त प्रमाण उनके जीवित रहने का निम्न लिखित और हैं जो उन्होंने "भट्टोत्पली" नामक ज्योतिष ग्रन्थ पर लिखा है।

\+ + + +

"संवत् १८४१ मार्ग शुक्ल प्रतिपदायां "लक्ष्मणपुरे" दीक्षित देवदत्तेन स्वपाठार्थं लिखितेयं "भट्टोत्पली" समाप्ति मगात्।

\+ + + +

उपरोक्त प्रमाणों से इनका वि० सं० १८४१ पर्यन्त जीवित रहना निर्विवाद सिद्ध है।

काव्य-विषय आलोचन

बहुधा लोग कहते हैं कि शृंगार प्रधान नायिका भेद के वर्णन से समाज में दूषित विचारों की सृष्टि करनी है। बड़े से बड़े क्या

संस्कृत, क्या प्राकृत, सब ही भाषाओं के कवियों ने रीति-ग्रन्थ ही बनाये हैं, वह बालकों के पढ़ने योग्य नहीं हैं, क्योंकि उनके सामने संसार का नग्न चित्र लाया जाता है। अतएव उनके उदासीन भाव युक्त होने के स्थान में वह रसिक बन जाते हैं और यही कारण है कि "श्री राधा कृष्ण" चरित्र में एक को नायक और दूसरी को नायिका की कल्पना करके सारे हिन्दू संसार में खुले रूप से मानो स्त्रियों को पर-पुरुष-रतिका बनाने की डौंडी पीटी गई है। गुप्त नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से व्यभिचार से घृणा हटाई गई है। परन्तु वर्त्तमान हिन्दू साहित्य में वेद से लेकर रामायण पर्यन्त हम एक बड़ी अलौकिक रचना देखते हैं, वह है अलंकारों की सृष्टि। इस आलंकारिक सृष्टि से क्या वेद क्या ब्राह्मण क्या उपनिषद; पुराणों में तो मानो इसका योवन-काल ही पाया जाता है। कहने का सार यह है समस्त भाषा काव्य ग्रन्थों में आलंकारिक प्रौढ़-काल पाया जाता है। उनमें ऐसी विचित्र उपमाओं का समावेश है कि हिन्दू संसार उसके प्रभाव से बच नहीं सकता। आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका में यद्यपि पठन पाठन व्यवस्था ग्रन्थों में सर्व प्रथम नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थों को गुरुकुल में न पढ़ाये जाने की सृष्टि की थी और उन "उषा और सूर्य" सम्बन्धी आख्यानों के अर्थ करते हुए ब्राह्मण ग्रन्थों के उन दोषों का परिहार भी किया है कि जिनमें "पिता पुत्री के पीछे दौड़ता है" आदि आदि। परन्तु उसी आर्यसमाज में ऐसे ऐसे अर्थ अभी तक किये जाने

की प्रथा प्रचरित हैं कि "परमेश्वर ने प्रकृति में गर्भ धारण किया" यहाँ जड़ में चैतन्य द्वारा गर्भ धारण का विचित्र उपमा केवल विकार सृष्टि की उत्पादिका मानी गई है परन्तु इसके मूल में ऋषियों की "मनाभावना" क्या ही विचित्र है। कोई दूसरी उपमा ही न मिली अथवा यही सरल-उपमा उपयुक्त हो सकती हो—देनी पड़ी। जो हो शुद्ध विचार में कैसी ही उपमा क्यों न हो मनोविकार उत्पन्न नहीं करती कि जब तक मन ही विकार युक्त न हो। वैष्णवों में "राधिका" प्रकृति के स्थान में मानी गई हैं। "श्री कृष्ण" को ईश्वर माना है। दोनों का 'रास' अथवा "रहस्य" प्रकृति-पुरुष के "क्रीड़न" का नाम है। साकार वादी जब निराकार का वर्णन करेंगे उन्हें दृश्य जगत् में समझाने के लिये कल्पना जगत् बनाना पड़ेगा कि जिससे सब को विषय के अवगाहन में सुभीता हो और इसी कारण उनकी दृष्टि में—

"वासुदेवः पुमानेकं स्त्रीमयमितिरञ्जगत्"

यह श्री मद्भागवत का प्रमाण देते सुना हैं कि जिससे उनके कल्पना जगत् का भाव अधिक स्पष्ट हो जाता है और फिर कुछ भी विषय-भावना सम्बन्धी दुर्गन्ध उसमें नहीं रह जाती। यह मानना पड़ेगा कि मध्यकालीन कतिपय क्या संस्कृत क्या प्राकृत अथवा भाषा के कवियों ने खुले शब्दों में अश्लीलता का अकाण्ड-ताण्डव दिखलाया है परन्तु वह सब उसी कल्पना जगत् के आधार पर दुस्साहस किया गया है। जहाँ प्रकृति 'स्त्री' रूपिणी है और पुरुष 'नर' रूप है वहीं ठीक राजा पुरुष रूप है और "राज-

महिषी" प्रकृति के स्थान में मान ली गई हैं और तत्कालीन समाज की सभ्यता के अनुसार अपने अपने मस्तिष्कों के बल-बूते राजाओं अथवा आश्रितों की अभिरुचि के अनुकूल कवियों द्वारा रचनायें की गई हैं। बस यहीं से अश्लील सृष्टि का आयोजन है अन्यथा "श्री राधाकृष्ण" के सम्बन्ध में ऐसी कोई अश्लील बात नहीं है, कि जितनी विकार आश्रित प्राकृतिक-भाव-पूर्ण कवियों की सूक्तियों में अब पाई जाती हैं। राधिकाजी प्राकृत-नारियों में नहीं थीं। वह विशुद्ध प्रकृति के स्थान में प्रकृति-सुन्दरी है और 'श्री कृष्ण' को "हिरण्यगर्भ" माना ही है। यदि आलंकारिक भाषा में ही सब दूषित-सृष्टि मनोविकार के योग से आ जावे तो नायिक अथवा नायिका के चरित्र पर क्या लांच्छन है ? वर्णन करने वाले का दोष है। श्री राधाकृष्ण विहार तो विशुद्ध प्रेम का अनुपम नमूना है। आजकल की उठाई गई आपत्ति कि "राधिका स्वकीया है या परकीया" यह कोई नई बात नहीं सब से पहिले स्वर्गीय बाबू वंकिमचन्द्रजी चटर्जी ने "श्री कृष्णेर चरित्र" नामक श्री कृष्ण की जीवनी में अक्षरशः यही आपत्तियाँ उठाई थीं और अब कतिपय मनचले मसखरों ने पुनः पिष्टपेषण किया है। राधिका जी घोषवंश की थीं। श्री कृष्ण भी यादववंशी थे। दोनों क्षत्रिय जाति के थे। इनके यहाँ एक पुरुष को छोड़ कर दूसरे में अनुरक्त होना वंश परम्परा की बात है इसमें स्वकीयत्व और परकीयत्व का क्या प्रश्न बन सकता है ? प्रकृति स्वकीया भी है और परकीया भी है। पुरुष समस्त प्रकृतियों में रमण करता

है। इस रमण से ही प्रकृति का सौभाग्य है। वह उत्तम और मध्यम सब प्रकार का नायक बन कर रहता है महा कवि देव ने "शृङ्गार विलासिनी" में स्वकीया का यह लक्षण किया है कि—

दो०—"स्वीया भवति पतिव्रता, कौलाचार रता च"

अर्थात् "अपने पति में व्रत वाली और अपने कुल के आचार में रत रहने वाली स्वकीया है।"

क्या कोई कह सकता है कि जहाँ "देवरः कस्मात् द्वितीयो वर उच्यते" इस यास्क वचन और "एष धर्मः सनातनः" कुन्ती के वचनों में पातिव्रत धर्म के विरुद्ध आज्ञा नहीं हैं; अथवा उसके विपरीत स्वाध्याय शील जानते हैं कि अवश्य ऐसा नहीं है। उक्त दशा में पंच कन्या चरित्र में क्या पतिधर्म का आदर्श है ? पति का अर्थ रक्षा करने वाला मात्र है। पिता और पति शब्द एक ही धातु से जन्मे हैं। दोनों का समान अर्थ है। रक्षा करने वाले में जिसका व्रत है वह पति-व्रता है। यही कारण है कि रक्षा करने में असमर्थ पति—वृथा पति है। "रायाण घोष" की स्त्री राधिका श्रीकृष्णजी को कुल के आचार के विचार से पति मानती थीं और उन्हीं में अनुरक्त भी थीं। स्व-पति अनुरक्ता परपति रक्ता नहीं हो सकती। राधिका को सामान्या स्त्री की भाँति कहीं नहीं कहा गया। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण जी न्यून अवस्था के थे और राधिका जी प्रौढ़ा नहीं तो योवना तो थी हीं। यदि उनका ध्येय-सम्बन्ध विषय-भोग के लिये था तो कदाचित अल्प-वयस्क

पति से पूर्ण योवना की संतुष्टि आकाश के कुसुम-वत ही सम
झनी होगी। ऐसी दशा में भक्तोन्मादकता में वह "मीरा बाई"
"सहजो बाई" आदि केसमान थीं। श्रीकृष्ण किसी के न पिता हैं
न पति हैं राधिका न स्वीया है न परकीया। जब ऐसी धारणा है
वहाँ पति-भाव से स्वकीया परकीया का सम्बन्ध स्थापित नहीं
करना होगा। वह माता हैं। वह पिता हैं। वह बन्धु हैं वह सखा
है—जब सब कुछ वह हैं—ऐसे समर्पण में क्या शेष रह जाता है।
"मीरा" के पति स्वर्गीय समराङ्गणैक पटु महाराणा संग्रामसिंह के
वीर सुज्येष्ट पुत्र कुँवर भोजराज के जीवित होते हुए भी—

"मेरे तो गिरिधर गुपाल दूसरा न कोई"

की ध्वनि उनके हृदय में गूँजा करती थी। क्या मीरा "पर-
कीया" थीं—क्योंकि वह राधा-पति-अनुरक्ता थीं।

पतिव्रता धर्म की विचित्र कहानी है—वसन्तसेना तथा उरछा
के महाराज इन्द्रजीत की वेश्या प्रवीन पातुर भी अपने को पति-
व्रता कहने का दम भरती थी। क्योंकि वह अपने रक्षक (पति)
में व्रत (सत्ता) वाली थी। जिस विशाल हिन्दू जाति में आठ
प्रकार के विवाह और आपत्ति धर्म का विधान है वहाँ "पातिव्रत
धर्म" की व्याख्या जो आजकल मानी जा रही है उस प्रकार
की कदाचित् उन दिनों न थी—अस्तु श्री राधिका जी "स्वकीया"
ही थीं न कि "परकीया" मानना होगा। इन्द्रजीत से प्रवीन पातुर
कहती है और पतिव्रत धर्म की भीख माँगती है—

आई हौं बूझन मंत्र तुम्हें, निज सासन सों सिगरी मति गोई।
देह तजौं कि तजौं कुल कानि, हिये न लजौं लजि है सब कोई।
स्वारथ औ परमारथ को रथ, चित्त विचारि कहौ अब सोई।
जामें रहै प्रभु की प्रभुता, अरु मोर पतिव्रत-भंग न होई॥

\+ \+ \+ \+

श्री सीताजी का पुष्पवाटिका में श्री रामजी के प्रति जो भाव था क्या वह भावना आर्य संस्कृति के अनुकूल न थी! पूर्वानुराग और परानुराग के व्यावहारिक अर्थ को अवश्य सम्मुख रखना होगा। तब लेखक महोदय दैविक संकल्प सृष्टि में स्वकीया और परकीया के प्रश्न को देखें कि वह कहाँ तक उसे पूरा पहुँचा सकते हैं। स्वकीया अथवा परकीया के ही सम्बन्ध में क्यों! हमें संस्कृत ग्रन्थों में कुछ विचित्र ही औचित्य प्रतीत होता है। जहाँ दैनिक जीवन की बात-चीत ऐसी हो कि जैसी गणेशजी और पार्वतीजी में हुई, क्या कोई कह सकता है कि निम्नलिखित पंक्तियों में कोई मनोविकार के उठने को स्थान है। प्रत्युत कौतूहल जनक शान्त भाव मय है। देखिये गणेशजी पार्वतीजी से क्या-क्या प्रश्न करते हैं?—

'मात स्तात जटायु किं सुरसरित् किं शेखरे! चन्द्रमा किं भाले! हुतभुक् लुठत्युसि किं! नागाधिपः किं कटौ! कृतिः किं! जघन द्वयान्तरगतं? यद्दीर्घ मालम्बते श्रुत्वा पुत्र वचोऽम्बिकास्मितवती लज्जावती पातु वः।"

शुद्ध भाव और अशुद्ध भाव के कथन में इतना ही अन्तर है।

\+ + + +

"मन हम पै चित और पै, झूँठों करत पियार।
हम परं डारति ढेकली, सींचत और कियार ॥"

\+ + + +

वाला भाव शुद्ध प्रेम में नहीं होता। जहाँ पर सदैव से यही भाव है वह उसी प्रकार रहेगा।

"मो मन मोहन सँग भयो पानी में को लौन।"

\+ + + +

अतः महाकवि देवजी ने शृंगार-विलास-प्रियता-वश अथवा राधिका के परकीयत्व प्रमाणित करने को काव्य-नाटक की अभिनेत्री राधिकाजी को नहीं बनाया, किन्तु प्रकृति का शृंगार मानो उसी के आश्रित कहा है।

\+ + + +

प्रकीर्ण-काव्य-समुच्चय

पाठकों के मनोरंजनार्थ, अब हम यहाँ महाकवि देवजी के उन फुटकर काव्यों में से कतिपय कृतियों का उल्लेख करते हैं कि जो प्रकाशित तथा अप्रकाशित किसी भी ग्रन्थ में अब तक नहीं आईं और वह प्रकीर्ण रूप से जहाँ तहाँ ही लिखी हुई मिलती हैं और द्विसंधान काव्य समान हैं।

गंगा ह्वै तिलोक विश्व पावन प्रवाह धरि,
हूवै करि तुपार जग ताप नाश कै रह्यो।
रमा के रमन सुख वस हेतु छीर सिन्धु,
मुकता वरन ठौर ठौर हंस ह्वै रह्यो॥
देवदत्त पंडित सदा शिव गुपाल जू को,
सुजस अशेप भूमि जस वीज वै रह्यो।
तीनपुर व्यापिनि त्रिपुर जम जालनु,
छिपाइकै छपा में छपाकर सो छै रह्यो॥१॥

\+ + + +

ब्रह्मा ब्रह्म तेज शिव सम्पति सदैव देख,
कमला निवास आस पूरी करौ मन की।
दैवत महीप करौ वृद्धि प्रभुता की रिद्धि,
सिद्धि दै गनेस फते देउ सदा रन की॥
देव कहै सोवत जगत चले जात वैठे,
भैरव गुसांई आइ रच्छा करौ तन की।
राज दरवारनि मैं आयुध प्रचारनि में,
राखो लाज चण्डी इन्द्रजीत जू के पन की॥२॥

\+ + + +

श्री भूदेव सदा शिवत्वयि सदा, ब्राह्मी रुचिर्र्द्धता-
मैश्वर्यं वलभित्प्रभुत्व सदृशं भूयान्मही मण्डले।

प्राकृतिक पूर्व से ही घटना घट चुकी थी कि ता० २६ सितम्बर सन् ३२ में मुझ पर भारत-दण्ड-विधान की धारा "१२४ ए" के समानान्तर भरतपुरराज्य के जुडीसल सरक्यूलर नं० ६३ के अनुसार जो उक्त धाराओं का अभिप्राय था पुलिस की ओर से अभियोग लगाया था परन्तु ठीक ६ मास की अग्नि-परीक्षा के पश्चात् स्पेशल सेशन जज श्रीमान् बाबू कुँवर बहादुरजी साहब बी०ए०, एल-एल०बी० के इजलास से मैं सर्वथा निर्दोष सिद्ध होकर तुरन्त विनिर्मुक्त कर दिया गया। परन्तु पुलिस ने उक्त निर्णय के विरुद्ध फिर अपील कर दी। अब हो भी क्या सकता था यतः मेरा कोई निश्चित ध्येय केवल राज्य कर्मचारी-कार्य या साहित्य सेवा के अन्य किसी प्रकार का न था। मैंने यही उचित समझा कि "साहित्य सेवा" ही की जावे तो कालक्षेप हो सकेगा। तदनुसार मैं हस्त लिखित पुस्तकों की खोज में लग गया। इसके लिये मैं भिन्न भिन्न स्थानों में गया और इस बीच में लगभग ५० अलभ्य पुस्तकें जो अब तक साहित्य क्षेत्र में नहीं हैं संग्रह कीं। पुस्तकें हाथ लगाने पर कृतियों को चिरंजीव कैसे रक्खा जावे यह विचार उत्पन्न होते ही मुझे एक बार फिर लखुना राज के इतिहास की खोजमें दलीपनगर ज़िला इटावा जाना पड़ा। इस खोज में मुझे महा कवि देवजी कृत अन्य काव्य सम्बन्धी मसाला विशेष हाथ लगा। मैंने यह सर्व संग्रह बड़ी सावधानी से कर लिया और लगातार फिर भी ढूंढ़ ढाँढ़ करता ही रहा। लखुना ज़िला इटावाकी वर्त्तमान महारानी "श्री महालक्ष्मी बाईजी"के पूर्वज श्री महाराज खड्गरावजी के पुत्र महाराज कुँवर श्री छत्रसालजी

कि जिनके आश्रित महाकवि देवजी अपने अन्तिम दिनों में रहे थे के निकटतम सम्बन्धी दलीप नगरके रईस श्री आनन्द माधवजी के यहाँ से पूरा पूरा मसाला मिलने पर मेरे हर्ष का वारापार न रहा। यह घर वही घर है कि जहाँ महाकवि देवजी 'आश्रित' हो कर रहे थे और शरीर भी यहीं पर छोड़ा था। ऐसी किम्वदन्ती भी है। जो हो, कुछ अन्य टूटे फूटे पत्रे जो महा कवि देवजी की ही कृतियों के और थे वह श्री पं० रूपकिशोर जी दीक्षित एवं श्री पं० शिवसेवकजी दीक्षित लखना जिला इटावा निवासी से प्राप्त हुये और मैंने अपना मन भर लिया। मैं उक्त महाशयों का इस कृपा के लिये आभारी हूँ। महा कवि देवजी कृत जितनी अप्रकाशित पुस्तकें कि जिनका इस अवतरणिका में विषय-दिग्दर्शन के साथ वर्णन किया गया है, अधिकांश में दिलीपनगर के श्री आनन्द माधवजी के भाई श्री गोविन्द माधव की ही पूर्ण कृपा से मिला था। अतः ये निर्विवाद प्रामाणिक महा कवि देवजी की ही अनुपम रचनायें हैं ऐसा मानना चाहिये।*

---

* मैं इन दिनों लखना राज्य के वर्तमान मैनेजर श्रीमान् सुधाकरजी शर्मा (बी० ए०) आनरेरी मजिस्ट्रेट (बरेली) की प्रेरणा से लखना राज्य के इतिहास लिखने का कार्य सम्पादन कर रहा था और वास्तविकता तो यह है कि मुझे जितनी सामग्री श्री आनन्द माधवजी के यहां से मिली वह इन्हीं महानुभाव की बतलाई रूप-रेखा से प्राप्त हुई अतः मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ। क्यों कि मैं गया तो लखना के इतिहास की सामग्री लेने और बीच में महा कवि देवजी के काव्य से भेंट हो गई। और इस प्रकार मेरे लिये दोनों कार्य सोना और सुयोग बन गये।

जब मैंने अपनी पूर्व प्रति को सर्वथा शुद्ध और प्रामाणिक पाया तो उसके प्रकाशन का पूर्व विचार फिर जाग्रत हो उठा। इतने में ही अखिल भारतवर्षीय श्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन देहली के प्रदर्शिनी विभागके मंत्री का पत्र मिला कि "आपके यहाँ अलभ्य प्राचीन संग्रह है भेजियेगा" मैंने तुरन्त लगभग ५० अप्रकाशित पुस्तकों के साथ इस शृंगार विलासिनी का भी पार्सल कर दिया परन्तु न जाने मैंने किस मुहूर्त से पार्सल भेजा था कि वह पार्सल लौटा दिया गया। मैं उन दिनों हरिद्वार चला गया था। वहाँ ज्वालापुर महा विद्यालय एवं गुरुकुल काँगड़ी के उत्सव से लौटा तो देहली में पूछ ताँछ की, किसी ने कुछ पुस्तकों का पता न दिया। अर्थात् पार्सल ऊपर का ही ऊपर लौट आया। अस्तु मैं भरतपुर आया तो घर से पत्र मिला कि "हस्त लिखित पुस्तकें लौट आई हैं"।

"पुस्तकं लेखनी भार्या परहस्ता गता गता।
आगता दैवयोगेन घृष्टा पृष्टा च मर्दिता" ॥

की कहावत से भयावह मेरा हृदय इस पुनः प्राप्ति पर ईश्वर को धन्यवाद दिये विना न रहा। अब मुझ में छपवाने की चिन्तामणि ने जन्म लिया, और मैं "शृङ्गार विलासिनी" की अन्य प्रतियाँ खोजने में भी लग गया।

"जिन खोजा तिन पाइयाँ"

की कहावत ठीक निकली। मैंने अपने परम इष्टमित्र श्री पं० सूर्यनारायणजी शास्त्री संस्कृताध्यापक, संस्कृत पाठशाला भरतपुर

सेपूर्वोक्त प्रतियों के सम्बन्ध में बातचीत की और उन्हें प्रतियाँ देखने को भी दे दीं। यतः उक्त श्री पं० जी संस्कृत एवं भाषा-साहित्य के एक उच्च कोटि के मर्मज्ञ विद्वान् हैं उन्हें इन प्रतियों को देख कर अपार हर्ष हुआ। मैंने इनके सम्पादन की भी चर्चा छेड़ी, तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर के "प्रति" संशोधन करने का भी आदेश किया और उसमें सहायता का वचन दिया। मैंने कहा कि जब तक अन्य प्रतियाँ और न मिलें तब तक पाठान्तर नहीं दिखलाया जा सकता, न संशोधन ही समुचित रूप से हो सकेगा। इस पर श्री पं० जी ने सब से पूर्व दो हस्तलिखित प्रतियाँ अपने संग्रह से निकाल कर मुझे दे दीं और अन्य कई स्थानों पर जहाँ जहाँ इसकी प्रतिलिपियाँ और उनके ज्ञान में थीं उनका भी संकेत दिया। निदान मैंने सब पुस्तकें (हस्त लिखित) संग्रह कीं और कार्यारम्भ कर दिया। निदान मुझे जो जो पाठान्तर जिस जिस सम्वत् की पुस्तक में मिले सब टिप्पणी में दिखला दिये हैं। भरतपुर राज्य में "शृङ्गार विलासिनी" की हस्त लिखित एक प्रति सं० १६१४ की श्रीसनातनधर्म पुस्तकालय में, दूसरी कविरत्न जमादार मुरलीधरजी चोबदार-ठाकुर के यहाँ और तीसरी प्रति श्री पं० सूर्यनारायण जी शास्त्री के पास मिली। उक्त श्री पं० जी के पास एक प्रति स्वर्गीय साहित्याचार्य श्री अम्बिकादत्त जी व्यास द्वारा संशोधित जो 'खड्ग विलास' प्रेस बाँकीपुर में संवत

१८४४ में छपी थी, वह भी मिली। इसके अतिरिक्त एक प्रति करौली राज्य से बड़े यत्न से प्राप्त हुई। इन सब से पाठान्तर की टिप्पणी बनाई गई। इस "शृंगार विलासिनी" की एक प्रति स्थानिक राजवैद्य श्री गोपीलाल जी मिश्र के स्वर्गीय भ्राता श्री पं० केदारनाथजी के हस्त लिखित पुस्तकों के संग्रह में जमादार मुरलीधर जी की बतलाई हुई है, परन्तु मुझे देखने को न मिल सकी इस का खेद है। तथापि यथा संभव छानबीन से पुनः पता चला कि ज्योतिष कल्पतरु के सम्पादक स्थानीय ज्योतिर्विद् श्री पं० मदनलालजी के यहाँ भी एक प्रति है यद्यपि वह लिपि मिली सही, परन्तु अपूर्ण थी फिर भी उससे यह सहायता मिली कि पाठान्तर किस किस प्रकार संगति पूर्ण किया जा सकता है। "खड्ग विलास" प्रेस से यह "शृंगार विलासिनी" "क्षत्रिय पत्रिका" की संख्या ४, ५, ६ (भाद्रपद, आश्विन, और कार्तिक) में मासिक "रूप" में निकलती थी जो सं० १६४३ में महाराज कुंवार श्री रामदीनसिंहजी के सम्पादकत्व में खड्ग विलास प्रेस से प्रकाशित हुई थी कि जिसमें केवल २८ वें श्लोक पर्यन्त यह "शृंगार विलासिनी" प्रकाशित हो सकी थी।

अनौचित्य दर्शन

यहाँ इसका भी उल्लेख करना परमावश्यक है कि स्वर्गीय साहित्याचार्य श्री पं० अम्बिकादत्तजी व्यास ने अपने चाचा श्री

पं० राधावल्लभ जी* की कृपा से श्री डुमरांव नरेश के पुस्तकालय से "श्रृंगार विलासिनी" का प्रकाशन† कराया था। यद्यपि यह श्रेय कार्य अवश्य था, परन्तु सम्पादित पुस्तक में महाकवि देवजी की वाणी का विलास सर्वथा रसिकों को नहीं मिल सकता वह "तिल तन्दुल" न्याय की कहावत में आ जाती है। व्यासजी ने यहाँ तक कृपा की कि देवजी की कृति को ही लौट पौट कर दिया जहाँ उनकी समझ में अर्थ न आया वहाँ नवीन चरण बनाकर कृति में घुसेड़ दिये कि जैसा उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है।

साहित्याचार्योऽम्बिका, दत्त नाम को नाम।
पुस्तक मेतदऽशूशुधत, चेतो हर सुख धाम॥ १

---

* एतत्पुस्तक संग्राहकोऽनेक विधि भाषा कविता सद्गुण प्रवीणो डुँमराव देशाधीशाश्रयोऽस्मत्पितृव्य चरणः श्री राधावल्लभ पंडित इति सोऽर्हति रसिकानां परः सहस्रान् धन्यवादन् इति।

† इस प्रकाशित श्रृंगार विलासिनी के मुख पृष्ट पर निम्न लिखित पंक्तियाँ लिखी हुई हैं:—

अम्बिकादत्तेन श्रीयुत् बाबू रामदीन सिंहस्यानुमत्या संशोधिता
श्री बाबू साहबप्रसादसिंहेन खड्ग विलास यंत्रालये
मुद्रापित्वा प्रकाशिता च
सं० १९४४ वि०।

ग्रन्था देकस्मादृते, कुत्राऽप्यन्यो नापि ।
अर्थे कस्मिन्नऽप्यऽलः, सहि कथमऽप्या लापि ॥ २
विहितः पाठश्च क्वच, न यथाऽत्याजि ।
तात्पर्यं ना ज्ञायि, तत्सङ्कलित भ्रमराजि ॥ ३
पर्यावर्ति वहुधा पदं, व्यरचि नवीनं किञ्च ।
प्रावन्धि सुयमकम् क्वचिद्, द्रष्वा पदावलिं च ॥४॥
दोषज्ञा इह पुस्तके, गुण गृह्याः प्रभवन्तु ।
उपहृत मेतत प्रार्थना, कृपयोरी कुर्वन्तु ॥५॥

उपरोक्त उद्धरण से विस्पष्ट है कि कवि के भावार्थ में अवश्य कुछ न कुछ परिवर्त्तन हो जाना सम्भव है। सारांश यह कि कवि देव की मूल-प्रकृति रूप कृति को विकृति रूप देने वाले व्यासजी ने यदि यहीं तक सन्तोष किया होता तो एक बात थी—सो नहीं, उन्होंने कवि देवजी की बहुत सी नायिकाओं के लक्षण ही लक्षित नहीं किये इससे अवश्य वह कवि देवजी की कृति के अनुदार-उद्धारक कहे जा सकते हैं; और कृति प्रकाशन को सर्वाङ्ग पूर्ण भी नहीं कहा जा सकता। अतः इन सब बातों को लक्ष्य कर इस पुस्तक का प्रकाशित किया जाना एक मात्र लक्ष्य में है।

कृतज्ञता प्रकाशन

"शृंगार विलासिनी" नामक पुस्तक के प्रकाशन का गुरुतर भार श्री सनातनधर्म महामण्डल काशी (बनारस) के अद्वितीय

वाग्मी विद्वान् श्री पं० ब्रह्मदत्तजी शास्त्री ने अपने ऊपर लेकर मानो मुझ सब प्रकार हलका करके अनुगृहीत किया है। अतः उनकी इस असीम अनुकम्पा के प्रति सहर्ष साधुवाद है। पाठक गण इस पुस्तक से अवश्य लाभ उठा कर इस साहित्य-श्रमोत्साह को परिवर्द्धित करेंगे और प्राचीन कृति को अपनावेंगे।

उपसंहार

यहाँ मैं अपने मित्र श्री पं० देवकीनन्दनजी सहकारी पुस्तकाध्यक्ष श्री हिन्दी-साहित्य-समिति भरतपुर को हार्दिक धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता कि जिन्होंने भूमिका लिखने में जिन जिन पुस्तकों का और जब कभी भी किसी आवश्यकता वश पुस्तकावलोकन की आवश्यकता हुई तब तब पूर्ण प्रेमोत्साह और सरस्वती सेवा का कार्य समझ कर समिति से पुस्तकें निकाल कर देने में उन्होंने कभी आनाकानी अथवा प्रमाद नहीं किया। जिससे कृति का सुचारु रूप समस्त सम्पादन कार्य अनवरत होता रहा।

अन्त में "महाराजा कालेज जयपुर" के बी० ए० कक्षा के विद्यार्थी भरतपुर निवासी चतुर्वेदी श्री प्रेमनाथजी* को कि

---

* आप चतुर्वेदी श्री भगवतप्रसादजी सेक्रेटरी म्यूनिसपल वोर्ड भरतपुर के चिरञ्जीव पुत्र तथा मेरे अभिन्न सुहृद चतुर्वेदी श्री युधिष्ठिर-प्रसादजी के भतीजे एक सुयोग्य और होनहार युवक एवं साहित्य-प्रेमी हैं।

जिन्होंने "जयपुर राजकीय लायब्रेरी" से मुझे "पुस्तक" दिलवाने की सुविधा-सहायता की उसके लिये शतशः धन्यवाद है।

इति श्री पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित लिखित मिदं
भूमिका भागः समाप्तः।

परिशिष्ट

महाकवि देव के अप्रकाशित ग्रन्थों की सारिणी कि जिनका उल्लेख इस ग्रन्थ में आया है और लेखक के संग्रह में विद्यमान हैं। सम्भव है कि और किसी के भी पास हो परन्तु अभी तक वह सब अन्तरपट में हैं अतः इनका लिखना उचित समझा।

१—शृंगार विलासिनी।

२—श्री लक्ष्मी दामोदर स्तुतिः।

३—शक्ति विलास।

४—कालिका स्तोत्र।

५—मनोभिनन्दिनी।

६—बखत विलास।

७—महावीर मल्लारि स्तोत्र।

८—राग विलास।

९—रघुनाथ लहरी।

१०—बखत विनोद।

११—माधव गीत।

१२—श्री लक्ष्मीनृसिंह पंचासिका।

१३—वरुणाष्टक स्तोत्र।

१४—शुक्राष्टक।

१५—साम्ब शिवाष्टक।

१६—नृसिंह चरित्र।

१७—प्रज्ञान शतक।

१८—श्री लक्ष्मी नसिंहाष्टक।

१९—वृत्तमंजरी।

*२०—वखत शतक।

---

* उपर्युक्त ग्रन्थों का परिचय तथा रचना काल का विवरण भूमिका भाग में आ चुका है। कोविद-गण वहाँ देखने की कृपा करें।

—लेखक।

❀ इत्योम् शम् ❀

❀ शृङ्गार-विलासिनी ❀

यहाँ विचार प्रेमीन को, विषयी जन को नाहिं ।

विषय विकाने जननु की, प्रेमी छुअत न छांहिं ॥

(देव)

शृंगार विलासिनी ।

"देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति"

इस "अथर्व वेद" के मन्त्र का यह अर्थ है कि "देव प्रभु का काव्य देख ! वह न मरता है न पुराना होता है। निस्सन्देह सुकृती कवि की कृति इसी प्रकार अजर, अमर होती है। उसी अजीर्ण एवं अशीर्ण महाकवि देवजी की "शृङ्गार विलासिनी" नामक रचना की भूमिका लिखना, उसे केवल आलोक मात्र में लाना है न कि उस कृति पर कोई आलोचनात्मक पंक्तियों में उक्त कवि के भावों से विशेष रुचिकर कोई विशेष रूप देना है। परन्तु पूर्वोक्त मन्त्र का पूर्वार्द्ध चरण इस प्रकार है कि "अन्ति सन्तं न जहाति अन्ति सन्तं न पश्यति"। अथर्व १०।८।२। अर्थात् "वह समीप है उसके पास रहते को छोड़ नहीं सकता, वह पास है तो भी उस को देख नहीं पाता"। यह ध्रुव निश्चय है, किसी रचना के बिना अन्तर्हित भाव को स्फुट किये कवि के उस तत्त्वार्थ को पहुँचना कठिन है कि जो रचनाकार को अभीष्ट होता है। यद्यपि कवि देवजी ने असाधारण पाण्डित्य एवं काव्य-कौशल-प्रदर्शन कर के रचना की है; परन्तु सहृदय

प्रेमी उसमें अधिकाधिक आनन्द लेने की इच्छा से इतने तन्मय हो कर अपनी और कवि की मनोभावना की संगति लगाना चाहते हैं कि दोनों परस्पर सम भाव पर पहुँच जावें। इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर यहाँ केवल इतना ही विवरण करना पर्याप्त होगा कि शृङ्गार विलासिनी क्या है? नायिका भेद क्या है? आदि-आदि। शेष भावों को सुधी-भूषण स्वयं अवगाहन करने की चेष्टा करेंगे।

नायिका भेद को बहुधा लोगों ने कुटनी-शास्त्र मात्र मान लिया है। यदि ऐसा ही है तो वह नाम लेने में भूल करते हैं। इसका शुद्ध नाम कूट-नीति शास्त्र कहना होगा। परन्तु यदि विचार करके देखा जावे तो यह बड़े महत्त्व का विषय है। राजनीति का मुख्याङ्ग है। परन्तु इस का महत्त्व राजनीतिज्ञ ही जान सकते हैं न कि सर्व साधारण। वस्तुतः सर्व साधारण के तो विलास की ही वस्तु हो सकती है। कुछ काल से यह इसी प्रकार की हो कर रहती भी आई है और इस का इसी प्रकार गौरव भी नष्ट हो गया कि जैसे हम बहुधा राज-दरबारों में देखते हैं कि अच्छे-से-अच्छा 'गायनाचार्यों' का जमघट जूतों के पास होता है और सुनने वाले इनसे उच्चासन पर बैठते हैं कि हँसी आती है कि धन्य रे समय! कि "आदिनाद अनहद जगो नाको वाणी वेद" जो आदिनाद विद्या थी उस का यह पतन! और उस के साधकों का यह सम्मान!! कि वह कला-वन्त के स्थान में कँगायल और "गीगन" की जगह "मीरासी"

और "कथानक" की पदवी वाले "कत्थक" कहलाते हैं !!! मनु भगवान् ने कहा है कि "अर्थ कामेष्व सक्तानां धर्म ज्ञानं विधीयते" जो मनुष्य अर्थ (धन के लालच) और काम (काम वासना रहित) हैं, उन के लिये धर्म और ज्ञान का विधान है न कि सबों के लिये। इसी भाँति नैतिक-जीवी मनुष्य के लिये आवश्यक है, कि वह इस मार्ग में पूर्ण कुशल हो तभी संसार के कार्य के योग्य चतुर बन सकता है। कौटिल्य-शास्त्र में इस विषय को बड़ा महत्त्व दिया है। विगत जर्मन युद्ध में जितनी जर्मन स्त्रियाँ थीं, वह अपने-अपने पतियों, उन से उत्पन्न पुत्र एवं उत्तरदायित्व भू-सम्पत्ति को छोड़-छोड़ कर अपने-अपने देशों में चली गईं—यह क्या था? केवल नायिका भेद का प्रबल प्रयोग था। उन्होंने सर्वस्व निछावर कर के अपने देश के हित के लिये बड़े-बड़े चतुर नीतज्ञों की पोल अपने हाथ में लेकर उस नीति को साधन युक्त पुष्ट किया कि जो उस क्षेत्र में अपना मौलिक ताण्डव नृत्य कर रही थीं। जापान और रूस की लड़ाई में पोर्टआर्थर को लेने की भी कथा इसी प्रकार की है। वर्त्तमान समय में भी जापान इन्हीं प्रकृति-भागिनी-भगिनियों द्वारा व्यापार देशोन्नति में अग्रसर हो रहा है। परन्तु हम अपने समाज को बनाना ही नहीं जानते। बनावें भी क्यों, इस से कौन से कुशों का मूलोच्छेदन करना हैं! क्या वेश्याओं ने हमारा समाज भ्रष्ट नहीं कर दिया!! हम भ्रष्ट क्यों हुए, न जानने से!!! आदि-आदि अनेक कूट-चरित्र हैं। कोई व्यक्ति उस समय तक

परिपक्व नहीं कहा जा सकता कि जब तक वह इस संसार में तत्कालीन सभ्यता की आधार-भूत नायिकाओं की मनोवृत्तियों को न मनन कर ले। उन के व्यवहार और क्रम को न अध्ययन कर ले। आज भी बड़े-बड़े नीतिज्ञ इन्हीं पुतलियों की अँगुलियों पर नाच रहे हैं! श्री शंकर और उभय भारती के शास्त्रार्थ में क्या हुआ था? शुद्ध बोध शंकर गृहस्थ-शास्त्र से अनभिज्ञ परिकाय प्रवेश करने पर ही मण्डन मिश्र की विद्वत्तमा नायिका से वार्त्तालाप करने के योग्य हुए थे। इसीलिये कहा है कि:—

"देशाटनं पंडित मित्रता च,
वाराङ्गना च राजसभा प्रवेशयन्।
अनेक शास्त्राणि विलोकतानि,
चातुर्य मूलानि भवन्ति पंच॥"

अर्थात्—चातुर्यचक्र—चूणामणि बनने के लिये देशाटन करना मुख्य है। पंडितों से मित्रता करनी आवश्यक है। वाराङ्गना और राज सभाओं में उठना बैठना औचित्य पूर्ण है। अनेक शास्त्रों का पठन पाठन यह सब पाँचों चतुरता की मूल हैं। अर्थात् अर्थ शास्त्र और राजनीति शास्त्र के पंडितों को इस रीति-शास्त्र से पूर्ण परिचय करना चाहिये। यह अवश्य है कि रीति-शास्त्र समय समय की संस्कृति के अनुसार बदलता रहा है परन्तु मौलिक भावनाओं में न कभी परिवर्त्तन हुआ और न हो। यह स्त्रियाँ यहीं रहेंगी और जो घटनायें जिस अवस्था में

अकारण· अथवा सकारण होंगी वह ज्यों की त्यों ही घटेंगी। पुरुषों ने भी कभी अपनी प्रकृति नहीं बदली "कर्म वैचित्र्यात् सृष्टि वैचित्र्यम्" रहा करती है। इसलिये जब हम देश देश की चरित्र-चित्रणी चातुर चलन चारणी वाराङ्गनाओं और पुरुषों के अभिनव एवं पुरा कृत्यों का गहरी दृष्टि से अध्ययन न करेंगे तब तक हमारा ज्ञान इस ओर एक प्रकार से अपूर्ण ही रहेगा और हम छले भी जा सकते हैं। हमारा भोलापन "बावलापन" कहलावेगा। कौन कहता है कि इस मार्ग के गमन करने वाले पथिक इनमें ही विरम जावें! क्या प्रदर्शिनी देखने जाने वाले किसी एक प्रदर्शन विभाग के प्रदर्श-पदार्थ बन कर वहीं रह जाते हैं। जिन दिनों ताँत्रिकों और कौलवों का प्रावल्य था उस समय की सभ्यता, बौद्ध और जैनाचार्यों के समय की सभ्यता इसी प्रकार आरम्भ से लेकर आज तक की समस्त सभ्यताओं में स्त्री जाति की ही एक ऐसी सभ्यता है कि वह जब चाहे तब मनुष्य समाज को पार करदे और जब चाहे तब उन्हें डुबादे।

मनु ने कहा है—

प्रजनार्थं स्त्रियः श्रेष्ठा धर्मार्थोनांच मानवः।

प्रजा के लिये स्त्रियाँ और धर्म अर्थ के लिये मनुष्य श्रेष्ठ है। जिन्होंने धर्मार्थ लाभ किया परन्तु प्रजनन शास्त्र के बुद्धू रहे तो उनकी बड़ी कुगति होती है। "दबी बिल्ली चूहों से कान कटाती है।" इस संसार में एक भोग शक्ति और दूसरी भोक्तृत्व शक्ति है

इस लिये इसमें अवश्य दक्षता प्राप्त करने को इस नायिका भेद शास्त्र का अध्ययन कर लेना परमावश्यक है।

प्रस्तुत पुस्तक शृंगार विलासिनी में इसी रीति-शास्त्र का रोचन रचना में विशद वर्णन है। महा कवि देव ने इस ग्रन्थ को बड़े अनुभव के साथ बनाया है। समस्त काव्य के देखने से विदित होता है कि उन्होंने इस के कृति-काल में अनेक भाव पूर्ण पुराने कवियों के मार्ग का अवलम्वन किया था जिसमें "रस मंजरी" और "शृंगार तिलक" के अतिरिक्त अनेक उच्च काव्य कोटि के भावों से भी ऊचे भाव प्रदर्शन किये हैं। इस छोटी सी कृति में "पंच सायक" के अधिकांश में भाव दिखाये गये हैं। "रति रहस्य" की गुप्त विधियों का सूत्र रूप से वर्णन है। "रस प्रदीप, रस मंजरी" और "अनंग रंग" का पूरा रंग जमाया है। पांचालीय "वभ्रुवीय शास्त्र" और "वात्स्यायन" के क्रम का वड़ी ही सुन्दरता से स्थान-स्थान पर उपक्रमण किया है। जैसे सात प्रकार के चुम्वनों में "स्फुर चुम्वन" और "सहतोष्ट चुम्वन" का वर्णन गुप्त रूप से आया है। "स्मर दीपिका" के अनुसार रति-कथा का समावेश मनोरम है। सुरतारम्भ में मोहन अथवा "प्रचण्ड वेगोप्यथमध्यवेगस्तथावरास्याल्लघुनामधेयः" आदि तीन प्रकार के सुरतों का दिग्दर्शन। आलिङ्गन, चुम्बन, नखच्छद, दन्तक्षत, केशाकर्पण, ताड़न, आदि का वर्णन है और इस कृति में इसी के अन्तर्गत तरंग नाम के केषाकर्पण का वर्णन आया है। "नागर सर्वस्व" के मतानुसार कुट्टनी मत का पूर्ण

दिग्दर्शन कराया है। बड़े-बड़े मन्त्रों का प्रयोग जैसे प्राचीन
समय के इस मार्ग के ग्रन्थों में पाये जाते हैं उस की ओर लक्ष्य
किया है। कामदेवी, चामुण्डा, विश्वेश्वरी आदि मन्त्र इस मार्ग
के कार्य साधन की युक्तियाँ हैं, उसी प्रकार "कक्षाकुचो रहः-
स्थल कुक्षिन्यभि श्रोणी ललाटाङ्घ्रि करेषु सद्यः सर्वाङ्गुलि
कैश्च सर्वैः सुव्यक्त एषः स्तन कन्धरादौ" की ओर इसमें एक
इंगित पाया जाता है। उन कण्टकों का वर्णन किया है कि जिसमें
यह कण्टक उस समय यहाँ तक बढ़ गये थे कि लोगों ने यज्ञोपवीत
को भी कण्टक मान लिया था। यथाः—

"यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, वयं वदामो न कदाचिदेवं
आलिङ्गने यत्कमलायताक्षा विनापराधेन किमन्तराय"
हारोनापिआरोपितः कण्ठे मया विश्लेष भीरुणा
इदानी मन्तरे जाता पर्वता सरितो द्रुमाः

ऐसे ऐसे सुभाषित रत्नों की छाया समुच्चय से दैदीप्य-
मान कृति मुक्त कण्ठ से सराहनीय यदि है तो महाकवि
देवीजी की है।

इस शृंगार विलासनीमें कविकुल गुरु कालिदास की अभि-
ज्ञान शाकुन्तल के ऐसे ऐसे पद्यों—

अनाविद्धं रत्नं किसलय मलूनं कररुहै।
अनाघ्रातं पुष्पं, मधु नव मना स्वादित रसम्॥

अखण्डं पुण्यानाम्, भवति च तद् रूप मनघं ।
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः
से तुलना लेती हुई प्रशंसनीय कृति विद्यमान है। सार यह है कि कविने रचनाके समय कुछ उठा नहीं रक्खा।

यदि प्रत्येक रहस्य पर कुछ न कुछ प्रकाश डाला जावे तो एक स्वतंत्र पुस्तक बन सकती है अतः दिग्दर्शन मात्र इतना ही पाठकों के चित को समाहित करेगा यह आशा है। काव्य की दृष्टि से इसमें बड़े बड़े चमत्कार युक्त ललित पद, वचन चातुर्य्य कोमल सूक्तियाँ, अनेक अलंकार दमक और अनुप्रास युक्त हृदय ग्राही रचनायें हैं। नायक और नायिकाओं के विभिन्न भेद उनकी औचित्य चर्या बड़ीही मनोहारणी वर्णन की गई है। छप्पय, दोहा, सवैया, और सोरठा सर्व प्रिय छन्दोंका प्रयोग करके संस्कृत-भाषा और व्रज-भाषा को शृंगार-मिश्रित किया है। हिन्दी क्या संस्कृत भाषा में अब तक इस प्रकार की कोई कृति देखने में नहीं आई कि जो "शृंगार विलासिनी"की टक्कर की हो। अब इसे देखकर रचना कर लेना एक साधारण सी बात होगी। विशेष कर सरस शब्द, समास सन्धियों और अनुप्रासों का प्रयोग सराहनीय है। सोरठे का उल्टा दोहा और दोहे का उल्टा सोरठा होता है परन्तु मजाल क्या कि कोई काव्य सम्बन्धी अथवा संस्कृत व्याकरण सम्बन्धी यदि दोहे को सोरठा और सोरठे को दोहा किया जावे तो कोई त्रुटि आजावे। श्री जयदेवजी तो कहा ही करते थे कि 'कमल कोमल कान्ति पदावलिं शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥' परन्तु यदि हम

इस चरण में 'शृणु तदा कविदेव सरस्वतीम्" पद जोड़ तो वे जोड़ बे मेल अथवा अत्युक्ति न होगी। मैं अधिक नहीं लिखना चाहता अब सहृदयों पर छोड़ता हूँ और गोवर्धनाचार्य की इस आर्या के साथ विषय को भी समाप्त करता हूँ कि—

"सत्कवि रसना शूर्पिः निस्तुस्तर शब्द शालि पाकने
तृप्तो दयिताधरमपि नाद्रियते का सुधा दासी"

ज्येष्ठ दशहरा सम्वत् ६१
भरतपुर राज्य।

विद्वानों का अनुग्राह्य—
गोकुलचन्द्र दीक्षित
"चन्द्र"
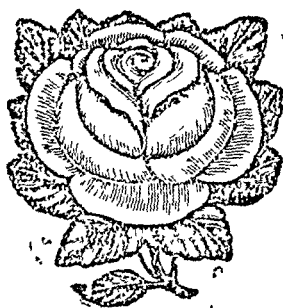
महाकवि देव जी की स्वहस्त लिपि ।
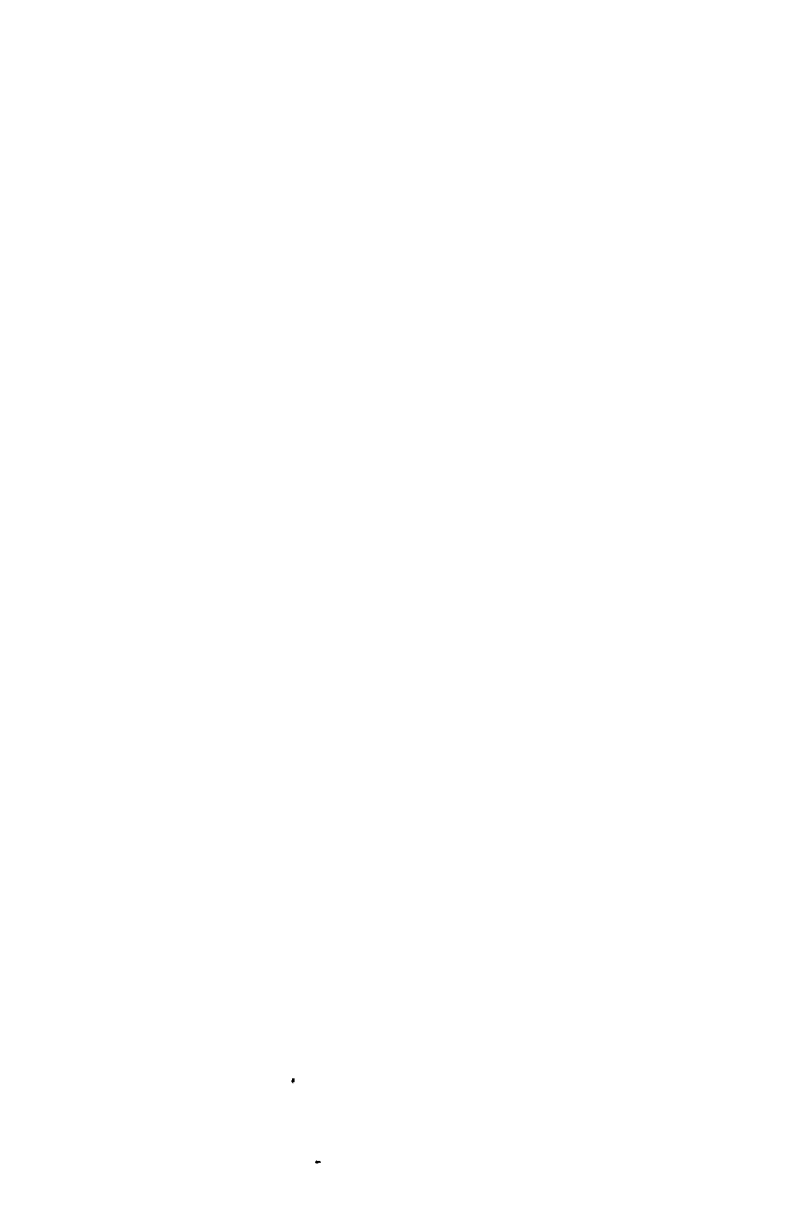
महाकवि देव कृत

शृङ्गार विलासिनी

मंगलाचरणम्

* छप्पय *

सुभग सिद्धि शुभ वृद्धि, सकल संतत, सुखकारिणि[1]।
दुर्गति[2] दुर्ग दुरन्त, दुःख दारुण दर दारिणि॥
शरणागत नैपुण्य पुण्य कारुण्य[3] विहारिणि।
जगद् निरूपित रूप, भूप भूप द्युति हारिणि॥
निर्मर्ष हर्ष हर्षित[4] वचन, सुर नरर्षि हरि हर नुते।
सुमतिघ्न विघ्नमपनय विभो[5], जय जय जय गिरवर सुते
॥१॥

१—शुभ कारिणि पाठान्तरम् १८२४। २—दुर्गत इति पाठः (सं० १८६६ की लिपि)। ३—पुण्य कारुण्य (लि० सं० १८२४)। ४—वर्षित (सं० १६४४ की लिपि)। ५—विभो! यह सम्बोधन

अर्थ—सम्पूर्ण सुखों की करने वाली, सर्वथा सुन्दर सिद्धियाँ, एवं पवित्र ऋद्धियों की देने वाली, बुरी गति रूपी जो दुःख के दुर्ग हैं उनके कठिन भय को नाश करने वाली, शरणागत में आये हुये को चातुर्य्य-कारुण्य (अपार कृपा) से विहार करने वाली तथा संसार में जिनका निरूपण नहीं है उन राजेश्वरों की कान्ति को हरण करने वाली, क्रोध रहित हर्ष के हाथ वचन बोलने वाली जिसको देव, मनुष्य, ऋषि, विष्णु और शिव प्रणाम करते हैं अतएव सुबुद्धि को आच्छादित करने वाले जो विघ्नादि हैं उनको हे ! गिरिवर सुते—श्री पार्वतीजी दूर कीजिये ।

* दोहा *

रसिक मुदे च विलासि जन, मनः परानंदाय ।
शृङ्गारैक[१] विलासिनी, क्रियते सुकवि हिताय ॥२॥

अर्थ—रसिकों के विनोद के लिये, विलासी मनुष्यों के मनों को अत्यानन्द प्रदान के निमित्त और उत्तम कवियों के लाभ के लिये मैं शृङ्गार विलासिनी को रचता हूँ ।

पुलिंगवाची है । गिरवर सुते के विशेषण तथा स्वयं पद स्त्रीलिंग हैं इनका समानाधिकरण नहीं होता अतः यहाँ पर विभो पद चिन्त्य है । विभु शब्द नित्य पुलिंग भी नहीं है क्योंकि "तर्क संग्रह" में अन्नम भट्ट ने "प्राच्यादिक व्यवहार हेतुर्दिग् सा चैका नित्या विभ्वीति च" पाठ रक्खा है । परन्तु यहाँ विभो पाठ सब लिपियों में एकसा ही रक्खा है ।

१—शुभशृङ्गारैकविलासिनीतिपाठः (लि० सं० ४४) तथा सं० २६ ।

यदि भरतादि निरूपिता, ग्रन्थास्संत्यपि[1] सन्तु।
सरस चमत्कृति मत्कृतिः, सुधियस्तत्र रमन्तु[2] ॥३॥

अर्थ—यदि भरतादिकों के बनाये हुये ग्रन्थ हैं तो हों! परन्तु मेरी सरस और चमत्कृत कविता में विद्वान् विहार करें।

श्रृङ्गारं रस नायकं, सुख दायक मवधेहि।
तस्य निदानं नायिका[3], नायक भेद मवेहि॥४॥

अर्थ—श्रृंगार रसों का सुखदायक-नायक माना गया है उसका मूल कारण नायक और नायिका भेद है।

त्रिधा नायिका कथ्यते, कविभिर्जगति[4] सदैव।
स्वीया परकीया तथा, सामान्या च तथैव॥ ५॥

अर्थ—कवियों ने सदैव से तीन प्रकार की नायिकायें बतलाईं हैं। जिन्हें स्वीया (स्वकीया) परकीया (पर पति रतिका) और सामान्या (गणिका) कहते हैं।

अथ स्वीया भेदः

मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, त्रिविधेति स्वीयापि।
कन्ये[5] ढेति च भेद तो, द्विविधा परकीयापि॥ ६॥

१—ग्रन्थास्मत्यपि सन्त पाठान्तर सं० १८२४। २—रमन्तु इति पाठः (लि० सं० ४४) रम् धातोनुदात्तेत्वात् पारस्मैपदे कथम् अत्राह "अनुदात्तेत्त्वप्रयुक्तमात्मनेपदमनित्यम्।" ३—नायका (लि० सं० १८२४)। ४—जगत (सं० १८२४)। ५—कन्योढेति पाठान्तरम् १८६६।

अर्थ—मुग्धा, मध्या, और प्रगल्भा भेदों से स्वीया तीन प्रकार की होती है और कन्या तथा ऊढ़ा इन भेदों से परकीया के दो भेद हैं।

सामान्यैक विधामता, नियतं मनसि विधेहि[१]।
तासां क्रमतो लक्षणो, दाहरणान्यभिधेहि॥ ७॥

अर्थ—गणिका एक ही प्रकार की निश्चय करके मानी गई है। अब क्रमशः उनके लक्षण कहता हूँ।

स्वीया भवति पतिव्रता, कौलाचार रता च।
अतद्व्रता पर गामिनी[२], परकीयेति मताच॥ ८॥

अर्थ—पतिव्रता और कुल के आचरण (वंश परम्परा) में रत का नाम स्वीया है। इसके विरुद्ध आचरण करने वाली और पर-पुरुषगामिनी परकीया कहलाती है।

वेश्या धन मिच्छति परं, भवति पुमानहि कोपि।
यया कदापि न गंण्यते, चतुरो वाऽचतुरोपि॥ ९॥

अर्थ—वेश्या केवल धन ही की इच्छा करती है वह संसार में चतुर अथवा मूर्ख का कुछ विचार नहीं रखती। अर्थात् उसके लिये सब बराबर हैं।

१—निधेहि पाठान्तरम् सम्वत् १८६६। २—पर गामिणी (सं० १८२४)।

स्वीया कथनं

* सवैया *

शोभित शील कुलाचरणाऽचल,
साधुतया न तया सम मन्या[1]।
कोमल वागति मंदतरा गतिरा-
लपितस्वर[2] साधु शरण्या।
नाथ कथं कथयामि तपस्तव,
यस्य गृहेस्ति पतिव्रत गण्या।
योषिदियं परमा परमावधि,
पुण्यलता धरणीतल धन्या[3] ॥१०॥

अर्थ—कुलाचरण (वंश मर्यादा) से युक्त, अविचल सतीत्व एवं सौजन्य सहित जिसके समान और कोई शीलवती न हो एवं मिष्टभाषिणी, मुस्कराते हुये मन्दवचन बोलने वाली, सुजन संगिनी, पतिव्रताओं में गिनी जाने योग्य, हे नाथ! ऐसी असीम पुण्य-लता (सुकृति वल्लरी) धरणी पर धन्य है, और जिस घर में ऐसी स्त्री है उसका तप अवर्णनीय है अर्थात्, कहा नहीं जा सकता।

अथ मुग्धा लक्षण माह

* दोहा *

यौवनस्य किल शैशवे, लक्षणानि विलसन्ति।
यस्या वपुषि च तां बुधा, मुग्धामिह कथयन्ति ॥११॥

१—सममण्या (सं० १८२४)। २—तरिमत पाठान्तरम्, १८६६। ३—धण्या (सं० १८२४)।

अर्थ—जिसके बाल्यकाल में ही युवावस्था के चिन्ह प्रकट होते हों उसे पंडितजन, काव्य संसार में मुग्धा कहते हैं।

मुग्धाकथनं यथा

* सवया *

ममैव किमु भ्रमतो नयने,
भवतीमिह पश्यत एव सदापि।
तवालि तनौ किमपि प्रतिभाति,
दिन द्वयतोन्य दशेव[1] तदापि॥
दृशश्चलता न वचष्कलता[2],
गमनस्थलता[3] जलता[4] न[5] पदापि।
तथापि विलक्षण सच्छविरेव[6],
सखि स्फुरति त्वयि कापि कदापि॥१२॥

अर्थ—तुझको सदैव देखते हुये भी मेरे नेत्रों को भ्रम सा हो रहा है अथवा मेरे नेत्र ही भ्रमयुक्त हैं। हे आली! तेरे शरीर में दो दिन से दूसरी ही दशा दिखाई देती है। अर्थात् दृष्टि में चंच-

---

१—द्वशेव (सं० १८२४)। २—वचकलता पाठान्तरम् (लि० सं० १८३६)। ३—गमनेजलिता पाठान्तर (लि० सं० १६५४)। ४—चलितापि पाठान्तर। (लि० सं० ४५) "जलता" अत्र "रलयोडलयो-र्भेद" से "ल" के स्थान "ड" होने से "जडता" बनता है और मन्दगामी होना भाव स्फुटित होता है। ५—अत्र देहली दीपक न्यायेन 'न' प्रयोगः। ६—छविस्म मपि पाठः (लि० सं० ५२)

लता, वचनों में मधुरता, चलने में मन्थरता, चरणों में स्थिरता (शिथिलता) युक्त विलक्षण छवि तुझमें कभी कभी झलक जाती है। यहा देहली दीपक न्याय से कवि ने नायिका का शैशवयुक्त यौवन वर्णन किया है।

मुग्धाभेदं कथ्यते

* दोहा *

मुग्धा तदनु च नव वधू नव यौवन भूषाच।
सुनवा[1] नंग रहस्य का, पुनरपि सा कथिता च ॥१३॥
तथा च लज्जा प्रायरति, रिति कवयः कथयन्ति।
मुग्धा या एवं विधा, भेदाः पंच भवन्ति ॥१४॥

अर्थ—मुग्धा पांच प्रकार की होती है। नववधू, नवयोवन भूषिता, नवानङ्ग रहस्यिका, लज्जा प्रायरति।

अथ नववधू उदाहरणान्माह

* सवैया *

सम्प्रति कस्य मनो हरतीह न-
मोहयतो[2] च न पश्यति याकं।
सा समवेत्य समागत यौवन,
मालि[3] तदैव जयष्यति[4] नाकं॥

१—सनवा इति पाठान्तरम् (लि० सं० ४४—लि० सं० १८४४)। २—मोहयतीव (लि० सं० ४४)। ३—माल सं० १८२४। ४—जयिष्यति लि० सं० १६१४।

क्रीड़ति कापि सरोज मुखी नव-
गोप सुता सखिभिः सखि साकं।
कस्य चिदेत दहो कृतिनः खलु-
पुण्य मुपैति परं परिपाकं॥१५॥

अर्थ—इन दिनों किसके मन को नहीं चुराती, किसको मोहित नहीं करती, और किसकी ओर नहीं देखती अर्थात् उपरोक्त सब ही क्रिया करती है। तारुण्य को सम्यक जान कर आनन्द-जनयन्ती कोई कमल वदनी नवीनगोपिका (राधा) सखियों के साथ खेल रही है। हे सखी! मानो किसी पुण्य-शाली पुरुष का असीम पुण्य परिपाक को प्राप्त हो रहा है अर्थात् पुण्यपक रहा है अथवा इसको प्राप्त करने वाला बड़ा ही भाग्य-शाली होगा।

नवयोवन भूषितोदाहरणम्

* सवैया *

तथापि[1] न तिष्ठति शैशव मे तद-
नन्त युगं यदि कोपि[2] न[3] पश्यति।
तदेव तवालितनावधुना नु-
दिनं क्रमतः सखि पश्य विनश्यति॥

१—तथा लभते न सुखेन सम मितिपाठोऽप्समीचीनः। २—कोपि (लि० सं० ८१ व ४१)। ३—कोपिन (सं० १८२४)।

सुहेतु[१] सुखस्य समैतु वयः,
कृततत्सदनं मदनं न नमः स्यति।
रहस्य मवेत्य रहस्यवतेति,
विहस्य विहस्य मनस्यति[२] पश्यति॥ १६॥

अर्थ—यदि कोई अनन्त युग पर्यन्त भी तपश्चर्या करे तो भी शैशव (बाल्यावस्था) नहीं ठहर सकती। हे आली! वही बालापन तेरे शरीर से अब प्रति दिन ढल रहा है इसे तू देख! अब सुखका हेतु (कारण) नवयौवन, आ रहा है और उक्त अवस्था में यदि जो तू कामदेव को नमन (आलिङ्गन) न करे तो, रहस्यज्ञाता बाले! इस प्रकार हँस हँस कर मन में किसको दृढ़ता से देख रही है?

"अब लड़कपन छोड़ दे, फ़सले बहार आने को है" वाला भाव है।

सारांश यह कि नव योवनागम के समय यह असम्भव है कि मनसिजालिङ्गन न किया जावे क्यों कि उस समय स्वभावतः ऐसे अनिवार्य लक्षण होते हैं जो कृत्रिम नहीं कहे जा सकते।

[सु] नवानंग रहस्योदाहरणं

* सवैया *

रन्तु मनेक वचः कपटै,
रभिसारितया नु[३] चरीभिरवश्यं।

१—सहेत न दुःख भयेननुयः (लि० ४४)। २—नमस्यति इति पाठान्तरम् (लि० सं० ४४ व १४)। ३—अनुचरो (सं० १८२४)।

केलि कला कुशलं त्वनुमाय,
वने वन[1] मालिन मालिनमस्यं ॥
कंटक कंप भयाकुलया,
यदि गस्यत आनमितानन शस्यं ।
तद्यपि[2] पश्य सपद्मनया,
प्रकटी कृत मद्य मनोज रहस्यं ॥१७॥

अर्थ—अनेक छल-युक्त वचनों द्वारा प्रशंसनीय अनुचरी ने रमण के लिये निश्चय प्रेरित किया। कंटक, कंप और भय से आकुल कुछ नीचा मुख किये काम के रहस्य को प्रकट करने वाली नायिका को हे आली! केलि कला में कुशल आदरणीय वन-माली (श्री कृष्ण) ने पहिचान (जान) लिया।

अथ लज्जा प्रायरत्युदाहरणं

* सवैया *

कुञ्चित चारु चलन्नयना,
शयना लय लोल दृगं चल रोपं।
चन्द्रमुखी विमुखी परिरंभ,
कृत प्रिय पाणि समागम लोपं ॥

१—नय (लि० सं० १६४८)। २—तदपि पाठन्तरम (लि० सं० ६६ प ४८)।

तेन समं स्वपिति[1] स्वकरेण,
विमुद्रतनी विकुच द्वय गोपं।
सा सभयं सनिरोध वचः,
स कुतूहल मेव सकंप[2] सुकोपं ॥१८॥

इति मुग्धादि भेदाः।

अर्थ—शयनागार में अधखुले सुन्दर चंचल नेत्रों से पलकों को न मारती हुई सोई हुई के मिस करवट लेकर नायिका ने अपने दोनों हाथों से नीवी और कुचों को ढांप रक्खा है अर्थात् दाब रक्खा है और प्रिय के आलिङ्गन करने को कौतूहल (खेल अथवा क्रीड़ा) वश, भय, कम्प और कोप को प्रकट करती हुई रोकती है।

टि०—भय—पति के रुष्ट होने का। कम्प—रति समराङ्गण का। कोप—वृथा रोप, दिखावटी क्रोध। कौतूहल—रति क्रीड़ा आह्लादवश आदि ही जानना चाहिये।

अथ मध्याभेद कथयति

* दोहा *

मध्या भवति चतुर्विधा, रूढ यौवना सा च।
प्रादुर्भूत मनोभवा, सुप्रगल्भ वचना च ॥१९॥

१—अत्र रुदादिभ्यः सार्व धातु के हलादि 'पित्' सार्व धातु कस्य 'इट्' (अष्टाध्यायी ७।२।७६) स्वपिस्वकरेण (सं १८२४)। २—सकोपं (सं० १८२४)

अर्थ—मध्या चार प्रकार की होती है। रूप योवना, प्रादुर्भूत मनोभवा, प्रगल्भ वचना और विचित्र सुरता।

सा विचित्र सुरता पुन[1], स्तथेति वुधा वदन्ति।
ता नऽधुना चतुर, स्ततो भेदानुदाहरन्ति ॥२०

अर्थ—विचित्र सुरता पंडितों ने चार प्रकार की बतलाई है अब उन के चारों भेदों को सोदाहरण कहते हैं।

अथ मध्याभेदेषु रूढ़ यौवनोदाहरणम्

❀ सवैया ❀

चारु तरे नयने नयने[2] जलजात,
युगं जयनेपि[3] [5]यदृच्छा[4]।
पीन नितम्ब समुच्च कुच द्वय,
भारनता च कटी किल कृच्छा[6]॥
सा रमणी रमणीयतरा, नव-
योवन लोक जयैक जिघृच्छा[7]।
शोभि तनुं सुतनुं[8] लव[9] लोक, य
चेदिह चेतसि तेपि दिदृच्छा[10]॥२१

१—पुनर्ज्ञेया पाठान्तरम् (लि० सं० १६४४)। २—नयतेति पाठान्तरम् (लि० सं० ४४)। ३—नयतीह पाठः (लि० सं० ४४)। ४—यदिच्छा (लि० सं० ४४ व १४)। ५—यद्रच्छा। ६—(कृच्छ)। ७—(गृच्छा)। ८—'स्व' पाठः (लि० सं० ४४) ९—लव पाठः (लि० सं० ६६ व ४४)। १०—(यद्रच्छा) सं० १८२४।

अर्थ—अत्यन्त सुन्दर दोनों नेत्र कमल-दल को भी पराजित करने की इच्छा करते हैं। पुष्ट नितम्ब, ऊँचे दो कुच कि जिन के बोझ से कटि कृशता को प्राप्त हो गई है ऐसी अति रमणीयतर वह नवयौवना रमणी लोक को विजय करने की इच्छा करती है। यदि तेरे चित्त में उस के अवलोकन की इच्छा है तो तू सुन्दर शरीर वाली को देख।

अथ मध्याभेदेषु प्रादुर्भूतमनोभवा कथनं

* सवैया *

भूषण[1] वेष विशेष विधौ[2] सततं
तव याति[3] मनोगुण गण्ये।
काम कला कुशलं तु वचो गति-
मन्द पदेन विमोहित[4] [5]जन्ये[6] ॥
जात मतर्कित रूपमिदन्तु विलो-
कयतः कृतिनोपि कि मन्ये[7]।
पश्यसि यस्य मुखे[8] सखि संप्रति
धन्य तमं तमहं ननु मन्ये[9] ॥२२॥

१—भूपित वेश विशेपंति पाठः (लि० सं० ४४)। २—रुचेति पाठः (लि० सं० ४४)। ३—जाति पाठः (लि० सं० ४४)। ४—विपोहित पाठान्तरम् (लि० सं० ४४ व १४)। ५—जन्ये—वर स्निग्धेति विश्वः "जन्योः वर वधू ज्ञाति प्रिय भृत्युहितेषु च इति विश्वः"। ६—जण्ये (सं० १८२४)। ७—(मण्ये सं० १८२४)। ८—मुखं पाठान्तरम् १८६६। ९—(मण्ये सं० १८२४)।

अर्थ—हे गुण गण्ये ! तेरा चित्त भूपण और वेश की विशेष रचना विधि में व्यतीत होता है। कामफला में कुशल, वचन और मन्द-गति से सम्बन्धियों को मोहित करने वाली ऐसे तेरे अतर्कित (जिस में तर्क न हो सके) रूप को देखते हुए कृति जन (जितेन्द्रिय) भी मोहित होते हैं अन्य का तो कहना ही क्या है। हे सखी ! जिस के मुँह को तू देख रही है उस के लिये मैं अत्यन्त भाग्यशाली मान रही हूँ।

अथ मध्याभेदे प्रगल्भ वचना यथा

गंतु[1] मना रजना वसियत्व—
मतो मुख मुद्रण[2] मेव विधेयं ॥२३॥

अर्थ—हे रसिक (भ्रमर तुल्य) प्राणपते! घूम-घूम कर पेय-विलास में यथेष्ट रस पान कर और कुमुदनी रूपी वनिता को देख और दुर्लभ कमलनी के मधु (पराग) का त्याग कर—यदि तू वहाँ अब न जायगा तो हे प्रिय! वहाँ जाने का अब ध्यान विसर्जन कर दे। रात्रिमें जो तू जाने की इच्छा करता है तो वह मुख-बन्द कर लेगी।

टि०—उक्त रचना में अनङ्गरंग के इस भाव का आश्रय लिया गया है।

रजनी सुरतेषु पद्मिनी न सुखं याति निसर्गतः क्वचित्।
दिवसे शशि योगतोऽसि सा विकसत्यम्बुजनी तथा रवेः॥

अथ विचित्र सुरतोदाहरणं

* सवैया *

बाल मराल रुतं मधुर ध्वनि,
मेखलयानु कृतं स[3] चरित्रं।
लावक[4] पोत कपोत रवोनु,
कृतोपि जया[5] भणि[6] तै रिति चित्रं॥

१—तुकाम मनसोरपि इति 'म' लोपः (वार्तिक) २—भास्वति वस्त्र पतावुदिते तु तया मुद्रण मेव विधेयं पाठान्तरम् (लि० सं० ४४)। ३—सु (लि० सं० ४४)। ४—जातक (लि० सं० १६४४)। ५—मया (लि० सं० १८६६)। ६—तया भणितै रति (लि०सं०४४)। भणितं "रति कूजितम्" इति मेदिनी।

अर्थ—हे गुण गण्ये ! तेरा चित्त भूषण और वेश की विशेष रचना विधि में व्यतीत होता है। कामकला में कुशल, वचन और मन्द-गति से सम्बन्धियों को मोहित करने वाली ऐसे तेरे अतर्कित (जिस में तर्क न हो सके) रूप को देखते हुए कृति जन (जितेन्द्रिय) भी मोहित होते हैं अन्य का तो कहना ही क्या है। हे सखी ! जिस के मुँह को तू देख रही है उस के लिये मैं अत्यन्त भाग्यशाली मान रही हूँ ।

अथ मध्याभेदे प्रगल्भ वचना यथा

* सवैया *

प्राणपते रसिक भ्रमर भ्रम,
विभ्रम भूरि रसं पिब पेयं।
कैरविनी[1] वनिता मवलोकय,
दुर्लभ मंजुजिनी[2] मधु हेयं ॥
चेदधुनैव न गच्छसि तत्र,
पुनर्न च यातु[3] मथ[4] प्रियदेयं ।

१—कैरविणीति पाठान्तरम् (लि० सं० १८६६)। २—मंजुगनी मधोगम् पाठान्तरम् (लि० सं० १८४४)। ३—जातु इति पाठान्तरम् (लि० सं० ४४) जातुः कस्मात् कदाचित्। ४—मनः इति पाठान्तरम् (लि० सं० ६६)।

गंतु[1] मना रजना वसियत्व-
मतो मुख मुद्रण[2] मेव विधेयं ॥२३॥

अर्थ—हे रसिक (भ्रमर तुल्य) प्राणपते ! घूम-घूम कर पेय-विलास में यथेष्ट रस पान कर और कुमुदनी रूपी वनिता को देख और दुर्लभ कमलनी के मधु (पराग) का त्याग कर—यदि तू वहाँ अब न जायगा तो हे प्रिय ! वहाँ जाने का अब ध्यान विसर्जन कर दे। रात्रिमें जो तू जाने की इच्छा करता है तो वह मुख-बन्द कर लेगी।

टि०—उक्त रचना में अनङ्ग रंग के इस भाव का आश्रय लिया गया है।

रजनी सुरतेषु पद्मिनी न सुखं याति निसर्गतः क्वचित्।
दिवसे शशि योगतोऽसि सा विकसत्यम्बुजनी तथा रवेः॥

अथ विचित्र सुरतोदाहरणं

* सवैया *

बाल मराल रुतं मधुर ध्वनि,
मेखलयानु कृतं स[3] चरित्रं।
लावक[4] पोत कपोत रवोनु,
कृतोपि जया[5] मणि[6] तै रिति चित्रं॥

१—तुकाम मनसोरपि इति 'म' लोपः (वार्तिक) २—भास्वति वक्ष पतावुदिते तु तया मुद्रण मेव विधेयं पाठान्तरम् (लि० सं० ४४)। ३—सु (लि० सं० ४४)। ४—जातक (लि० सं० १६४४)। ५—मया (लि० सं० १८६६)। ६—तया मणितै रति (लि०सं०४४)। मणितं "रति कूजितम्" इति मेदिनी।

अर्थ—हे गुण गण्ये ! तेरा चित्त भूषण और वेश की विशेष रचना विधि में व्यतीत होता है। कामकला में कुशल, वचन और मन्द-गति से सम्बन्धियों को मोहित करने वाली ऐसे तेरे अतर्कित (जिस में तर्क न हो सके) रूप को देखते हुए कृति जन (जितेन्द्रिय) भी मोहित होते हैं अन्य का तो कहना ही क्या है। हे सखी ! जिस के मुँह को तू देख रही है उस के लिये मैं अत्यन्त भाग्यशाली मान रही हूँ।

अथ मध्याभेदे प्रगल्भ वचना यथा

❋ सवैया ❋

प्राणपते रसिक भ्रमर भ्रम,
विभ्रम भूरि रसं पिब पेयं।
कैरविनी[1] वनिता मवलोकय,
दुर्लभ मंबुजिनी[2] मधु हेयं॥
चे दथुनैव न गच्छसि तत्र,
पुनर्न च यातु[3] मय[4] प्रियदेयं।

१—कैरविणीति पाठान्तरम् (लि० नं० १८६६)। २—मंबुजनी धनरोपम् पाठान्तरम् (लि० नं० १८४५)। ३—जातु इति पाठान्तरम् (लि० नं० ४४) जातुः कस्मात् कदाचित्। ४—मनः इति पाठान्तरम् (लि० नं० ६६)।

प्रौढ़ा चार प्रकार की होती है अर्थात् लब्धपति-रतिका, समस्त रति कोविदा, क्रान्ति-प्रिया (आक्रान्त नायिका), सविभ्रमा। अब इन मुग्धाओं के भेद को सोदाहरण कहते हैं।

अथ प्रौढ़ाभेदेषुलब्धापति कथ्यते

* सवैया *

कियंति न संति पयोज वनानि
वने विलसंति लसन्त सदैव ।
विनैव विशेष रुचिं कमपीह
समेषु[१] न पृच्छति कोपि कदैव ॥
पतिर्मम शोण सरोजकलो कुरुते
श्रुत[२] भूषण मालि यदैव ।
विभिन्न वियोग[३] वपू रुधिरारुण
मार शरत्व मुपैति तदैव ॥२७

अर्थ—वन में सुशोभित कितने कमल बन नहीं हैं जो सदैव ही सुशोभित रहते हैं अर्थात् हैं। परन्तु कोई बिना विशेष रुचि के कभी समान धर्म वालों में नहीं पूछा जाता। हे आली! तेरा पति रक्त सरोज कली (लाल कमल कोरिक) को जब तेरे कान का भूषण बनाता है तब मानों छिन्नभिन्न वियोगी के शरीर के रुधिर से लाल, काम के वाण लगने के समान उसे प्राप्त होता है अर्थात् वह काम-वाणत्व

१—जनेषु पाठान्तरम् (लि० सं० ४४)। २—(श्रुति सं० १८२४)। ३—वियोगि (लि० सं० १४)।

नीरद नाद भयस्य मिषेण,
सुखेन परिस्वजति प्रिय मित्रं ।
चुंवति मन्द वचस्मथनेन,
तथा सुरतं प्रकरोति विचित्रं ॥२४

इति मध्या ।

मेखला (क्षुद्र घंटिका) ने चरित्र सहित हंस के वच्चे के मधुर शब्द का अनुकरण किया और रति के शब्द (सीत्कारादि) से अति विचित्र लवा (वटेर) के वच्चे, और कवूतर के शब्द का अनुकरण किया एवं मेघ के गर्जन के वहाने सुख पूर्वक प्रिय का आलिंगन किया है और धीमी-धीमी वाणी के उच्चारण के मिस चुम्बन भी किया है इस प्रकार विविध प्रकार के सुरत (रति रङ्ग) को करती है ।

टि०—काम सूत्रों में वात्स्यायन ने हंस, लवा और कपोत के शब्दों का वर्णन किया है ।

अथ प्रौढाभेदं कथयंति

* सोरठा *

लब्ध्वा पतिरिति[1] सैव या समस्त रति कोविदा ।
क्रान्त[2] प्रिया तथैव पुनरपि भवति स विभ्रमा ॥२५॥

* दोहा *

चत्वारो भेदा अमी प्रौढायाः प्रभवन्ति ।
प्रत्येकं समुदाहृतीस्तेपामथ कथयन्ति ॥२६॥

१—रति (द्वि० सं० ६६) । २—कान्त (द्वि० सं० ६६) ।

प्रौढ़ा चार प्रकार की होती है अर्थात् लब्धपति-रतिका, समस्त रति कोविदा, क्रान्ति-प्रिया (आक्रान्त नायिका), सविभ्रमा। अब इन मुग्धाओं के भेद को सोदाहरण कहते हैं।

अथ प्रौढ़ाभेदेषुलब्धापति कथ्यते

* सवैया *

कियंति न संति पयोज वनानि
वने विलसंति लसन्त सदैव।
विनैव विशेष रुचिं कमपीह
समेषु[१] न पृच्छति कोपि कदैव॥
पतिर्मम शोण सरोजकली कुरुते
श्रुत[२] भूषण मालि यदैव।
विभिन्न वियोग[३] वपू रुधिरारुण
मार शरत्व मुपैति तदैव॥२७

अर्थ—वन में सुशोभित कितने कमल वन नहीं हैं जो सदैव ही सुशोभित रहते हैं अर्थात् हैं। परन्तु कोई बिना विशेष रुचि के कभी समान धर्म वालों में नहीं पूछा जाता। हे आली! तेरा पति रक्त सरोज कली (लाल कमल कोरिक) को जब तेरे कान का भूषण बनाता है तब मानों छिन्नभिन्न वियोगी के शरीर के रुधिर से लाल, काम के वाण लगने के समान उसे प्राप्त होता है अर्थात् वह काम-वाणत्व

१—जनेषु पाठान्तरम् (लि० सं० ४४)। २—(श्रुति सं० १८२४)। ३—वियोगि (लि० सं० १४)।

को तभी प्राप्त होता है—लगता है। अथवा वह वियोगी जनों के शरीर को रुधिर युक्त करता है। भाव यह कि उनमें उस समय रुधिर संचार होता है।

प्रौढ़ाभेदे समरतरतिकोविदा

* सवैया *

रभसा सुरत प्रचलत्तव[1] नूपुर
कंकण किंकिण का। रणितं।
सुखधाम सुधा मधुरं तु भवेद भि[2]—
राम युतं सुरतं[3] मणितं॥
उपयोरपि यत्र कला कृतिनो रति
कोमल केलि कलं[4] भणितं।
कथयामि निरन्तर मालि[5] तदेव
परस्पर प्रेम परं पणितं॥२८

अर्थ—सुरत के संवेग से चलते हुये तेरे नवीन नूपुर, कंकण और किंकिण के जो शब्द हैं वह, और विश्राम युक्त (ठहर ठहर कर) सुधा के समान मिष्ट, सुख के धाम (सुखोत्पादक) "सीत्कार" आदि ऐसे शब्द, दोनों ही (दम्पति-सहचास) काम-कला-कुशल रति में कोमल क्रीड़ा के शब्द-युक्त प्रयुक्त हो रहे हैं। हे आली!

१—नवनूपुर (बि० सं० ४४)। २—विराम युतं (बि० सं० ११)। ३—सुखे (बि० सं० ४४)। ४—केलि कला भणितम् (बि० सं० ४४)। ५—(माह सं० १८२४)।

मैं कहती हूँ कि परस्पर प्रेम का परि पाक हो गया है। अर्थात् आनन्द से भोग सुखावह दम्पति जीवन बन गया है।

अथ प्रौढ़ाभेदेषु आक्रान्त नायका

* सवैया *

मनः सभयं भवतीति शिरो मम
नाथ निजे सुभुजे[१] विनिधेहि[२]।
निजो रसिधेहि मदीय मुरः परितः
परि रंभ विधिं च विधेहि॥
तदाह[३] मिह स्वपिमिस्व सुखं तु
मुखं प्रिय पीत[४] पटे न पिधेहि।
भवंत मिदं तु कथं कथयामिह[५]
कामपि काम कथा मभि[६] धेहि॥२६

अर्थ—हे नाथ! मेरा मन भयभीत हो रहा है। मेरे मस्तक को अपनी भुजा पर रखने और अपने वक्षःस्थल में मेरे वक्षःस्थल को लगाकर सब प्रकार प्रत्येकाङ्गालिङ्गन करो। तब मैं सुख से सोऊं। मेरा मुख पीत पट से ढक भी लो। आप से यह मैं कैसे कहूँ कि कोई कामकथा भी कहिये!

१—पि० (लि० सं० ६६ ४४, एवं १४)। २—(विनधेहि सं० १८२४)। ३—तदाहमपि स्वपिमीह [र] (लि० सं० ४४)। ४—चीन (लि० सं० ६६ व ४४)। ५—कथयामिनु (लि० सं० ६६ व ४४)। ६—मवधेहि पाठान्तरम् १८६६।

टि०—यहाँ नायिका लज्जा-युक्त वचन विदग्धता से रति-संकेत सूचित कर रही है।

अथ प्रौढा भेदेषु सविभ्रमा

* सवैया *

वर वर्णिनि रूप मिदं कथयामि,
कथं तव सर्व शुचेः सचनं[1]।
रस रास विलास रसा स[2] विहास,
विचित्र चरित्र रुचेर्रचनं॥
मदन ज्वर आलि विलोकय तस्तु,
तथापि करोति मनः पचनं।
यद[3] पीन्दु[4] मुखच्युत मिंदु मुखि,
अणुते स सुधा मधुरं वचनं॥ ३०॥

इति प्रौढा।

अर्थ—हे वर वर्णिनि आली! (अच्छे शरीर कान्ति वाली) रस, रास विलास, हास के विचित्र चरित्र की रुचि पूर्ण रचना-युक्त परम, सर्व पवित्रताओं का संकलन रूप ऐसे तेरे स्वरूप को देखते हुये यद्यपि पुरुष को मदन ज्वर मथित करता है परन्तु तथापि हे चन्द्रमुखी! मुखचन्द्र से निकले हुये अमृत तुल्य मिष्ट

१—रचनम् (हि० सं० ५४)। २—रसासन हास (हि० सं० ५५)। ३—(यदिदीन्दुमुखी सं० १८२४)। ४—यदपीन्दुमुखी (हि० सं० ५५)।

वचन को जब वह (नायक) सुनता है तब अर्थात् शान्ति आ जाती है।

अथ मुग्धा दीनां सुरत स्वरूपान्मुच्यते

अथ मुग्धा सुरतं यथा

* सवैया *

वदतीति नवोढ़ वधू दयिते[१]
दयिते, गुण योवन शील[२]नुते।
भय मत्र मतं न विधेहि रतं[३],
वितनोमि मनोभि मतं तनुते[४] ॥
वहुवाद[५] वृता भय[६] कोप भृता च,
स कंटक कंप तनुं तनुते।
विजुषं[७] परि रंभ सुखं पुनरेव,
मनागपि रंतु मना मनुते ॥ ३१ ॥

अर्थ—हे गुण, योवन और शील, से नम्र प्रिये। नववधू से नायक के ऐसा कहने पर कि यहाँ तुझको शंका (भय) न करनी चाहिये अर्थात् रति कर। और तेरे मन के अनुकूल ही करूंगा।

१—दयितो (लि० सं० ४४)। २—शीलनते (लि० सं० ४४)। ३—रति (लि० सं० ४४) ४—ननुते (लि० सं० ४४)। ५—अथ सातु महाभय कोप युतां (लि० सं० ४४)। ६—नच (लि० सं० ६६)। ७—विमुखे (लि० सं० ६६ व ४४)।

इसके अनन्तर महाकोप और भय से युक्त वह नायिका कंटक और कंप युक्त शरीर को करती है। आलिङ्गन के सुख को प्राप्त नहीं होने देती न रमण (रति-इच्छा) में ही किंचित मन को प्रयुक्त करती है। अर्थात पति को सब प्रकार मने करती है।

अथ मध्या सुरतोदाहरणम्

* सवैया *

सा दयिता सुरतं कुरुते परि,
रंभनपूरित[1] प्रेम प्रकाशं।
सत्रपमत्र विचित्र वचः स,
पवित्र चरित्र चरित्र विकाशं॥
सालसमेव सविस्मित सस्मित,
सुन्दर शोभि सुधा सम हासं।
सानि विमोह सुखं सुसुखं स-
भयं सदयं सरसं स विलासं॥ ३२॥

अर्थ—आलिङ्गन से भरा हुआ प्रेम-प्रकाश है जिसमें, ऐसी वह रमणी सुरत करती हुई, लज्जायुक्त विचित्र वचनोच्चारण से पवित्र चरित्र को प्रकाश (प्रकट) करती है। एवं आलस्य युक्त, विस्मय सहित, मन्द मुसकान करती हुई सुन्दर सुधा सदृश शोभन हास युक्त सुख सम्भाषण में भय, दया तथा सरस विलास को भी बताती है अर्थात् रंगमय है।

१—रभस (हि० सं० ५४)।

टि०—लज्जा युक्त वचन = सीत्कार शब्दादि के बोधक हैं। पवित्र चरित्र = साम्द-स्मर-समर के द्योतक हैं।

अथ प्रौढ़ा सुरतोदाहरणम्

* सवया *

चुंबन चाटु वचो नख[१] दान परा
परि रंभ सदंभ सदंका।
काम कला कुशला सुरुते[२] कल-
कोमल कूजित[३] पूजित[४] शंका॥
केलि चलगतिरिन्दुमुखी[५] श्रम-
विन्दु विराजति[६] चंदन पंका।
मोह मिता न विवेद पुनः क्रियते
किमिति कच कोप महंका॥२३

अर्थ—चुंवन, चाटुवचन (मनुहार शब्द) नख-चिन्ह, से तत्पर और आलिंगन से दम्भ सहित निःशंक और सुख पूर्वक रति-केलि-कला-कुशल, मधुर एवं कोमल सीत्कार, से कोयल के समान बोलने की आशंका युक्त, केलि-क्रिया में अति चंचल ऐसी कोई चन्द्रमुखी (इन्दु-मुखी) श्रम के विन्दुओं (पसीने)

१—मुखदानं (लि० सं० ४४)। २—सुरते (लि० सं० ६६)। ३—कोकिल (लि० सं० ६६ व ४४)। ४—कूजित (लि० सं० ६६ व ४४)। ५—वलद्गति (सं० ४४)। चलद्गति (लि० सं० ६६)। ६—विराजित (लि० सं० ६६ व ४४)।

से युक्त चन्दन-पंक की शोभा सहित, मोह करके व्याप्त यह नहीं जानती कि यह क्या है ! और मैं कहां हूँ ! और कौन हूँ ! यह प्रिय भी कौन है ! अर्थात् पूर्ण कामार्ता हो रही है ।

अथ मुग्धादीनां मानावस्थाः तत्र मुग्धा मानः

❀ सवय। ❀

उपसि प्रिय मागत मन्य गृहाद्दु-
पलभ्य[१] वधूरपराध जुषं ।
न शशाक वचः[२] कथितुं[३] परुषं
नरुषं च चकार विलाय मुखं ॥
परिमृज्य जलं[४] नयने शयने च
धृता[५] सुदती रुदती विमुखं ।
परिरभ्य च तेन तदा पुनरेव
प्रसाद्दयिता[६] परि चुंब्य मुखं ॥३४

अर्थ—प्रातः काल अन्य गृह में आये हुये प्रिय को अपराध युक्त जान कर भी नव वधू ने किसी कठोर वचनों का प्रयोग न किया। वह मुख को विसर्जन करती हुई भी क्रोध को भूल गई। यद्यपि उस सुन्दर दन्त वाली (नायिका) ने मुँह फेर कर आँसुओं को

१—गृहाद् दृश्यन्ते। (ग० सं० १४) २—वचो (वि० सं० ६६ व ४८)। ३—गदितुं (वि० सं० ४८)। ४—नयने (वि० सं० ४८)। (वर्ध सं० १=११)। ५—दयितः (वि० सं० ४८) ६—समुपचुम्बित (वि० सं० ६६ व ४८)।

पौंछती हुई शयनागार में जा लेटी। (नायक) ने उसके मुख का चुम्बन एवं आलिंगन करके तब उसे प्रसन्न किया।

टि०—यह खण्डिता के लक्षण का द्योतक है।

अथ मध्या मानः

* दोहा *

मध्या मानवती यदा, त्रिधा तदा भवतीह।
धीरा धीरा मध्यमा, तथा प्रगल्भा पीह॥३५॥

अर्थ—मध्या मानवती तीन प्रकार की होती हैं। धीरा, अधीरा धीरा ऽधीरा। प्रगल्भा इसी प्रकार तीन प्रकार की मानी गई हैं।

कोप व्यंजकमथ[१] परुष वचो रुदित वचनं च।
औदास्यं सुरते[२] वचस्तर्जनादि स्व[३] नंच॥३६॥

अर्थ—कोप को जतलाने वाली, कठोर वचनों युक्त रोती हुई जो वचन कहे, सुरत में उदासीनता (मन न लगावे) वचन और तर्जन (मने करती हुई) आदि धमकाने के भाव संप्रयुक्त मध्या मानवती कही गई है।

औदास्यं तर्ज्जन वचः, क्रमतस्तयो रवेहि[४]।
उभयो रपि षड्भेदयो–रुदाहरणमभिवेहि॥३७॥

१—मय (लि० सं० ४४)। २—सुरते (लि० सं० ६६)। ३—वचनं (लि० सं० ६६ व ४४)। सुवचनं (लि० सं० ४१ [स्व] चनं १४) रचनंच (लि० सं० ६६)। ४—(रवेहि सं० १८२४)।

अर्थ—अहो! यह अश्चर्य है कि यह क्या विपरीत फल है ऐसा कहते हुये कि हे नाथ! मेरा मन डरता है परन्तु सर्वथा ही कुछ आपको भयगामी (भयप्रद) है या नही!! द्वितीया के चन्द्र कला की भांति आकाशके समान तेरे वक्षःस्थल में उदय हो रहा है अर्थात् नखच्छद। यह प्रातः काल में भी द्वितीया तिथि के चन्द्रमा से अधिक रुचि को प्राप्त है। भाव यह है कि इतनी देर तक द्वितीया का चन्द्रमा नहीं रहा करता। यह क्या विपरीतिता है।

टि०—नायिका ने (प्रातः) नायक के वक्षःस्थल में नखच्छद (नख रेख) देखा। नखच्छद दौज के चन्द्र के आकार का स्वभावः ही होना था। क्योंकि नौंह का चिन्ह द्वितीया के चन्द्राकार समान ही बनता है। वह नायिका कहती है कि यह क्या उलटा हो रहा है कि न जाने आप (नायक) को इसकी आशंका है भी या नहीं, कि रात्रि में द्वितीया का चन्द्र निकल कर प्रातः भी उसी रुचि को उत्पन्न कर रहा है। इसलिये कि दौज का चन्द्र प्रातः तक नहीं रहता।

अथ मध्या अधीरा यथा

* सवैया *

चेतसि ते वसति प्रिय सैव
　　　　समीहित दान वचो नमनीया।
कोप पराय वधूरपरा प्रभवे-
　　　　दिह कापि कथं कमनीया॥

रमणं व्रज यत्र विभो भवता
करणीय महो कृत[1] मेव भृशं ।
दयितं प्रति संप्रति मोह मिला
वदद[2] श्रुजलेन पिधाय दृशं ॥४०

इति मध्मा ।

अर्थ—हे नाथ ! मैं तुम्हारे पुण्य को किस प्रकार कथन करूं । गुण से किस का गुण सदृश हो सकता है आप उसके ही प्रेम को परिपालन करो अर्थात् उसी से प्रेम करो । उसे कभी कम न होन्‍े दो । हे रमण ! जाओ और जो कुछ आपको करना था वह कर चुके !! प्रिये के प्रति उक्त समय (नायिका) नेत्र को मींच मींच कर अश्रुपात करने लगी । अर्थात् रोने लगी । भाव यह रो-रोकर प्रेम प्रदर्शित करने लगी । परन्तु यह सब मोहवश क्रिया प्रदर्शन था ।

मानावस्था भेदत्रयं ।

अथ प्रौढा यापि मानावस्था क्रमेणोदाह्रीयते ।

अथ प्रौढा धीरा

* सवैया *

याहि तदीय मितः सदनं वदनं,
न च दर्शय मा मभिवादं ।

१—नाच (लि० सं०४४) । २—वहदश्रु (लि० सं० ४४) ।

अथ प्रौढा धीरा यथा

* सवैया *

नमौ[1] नमिदं वर माल[2] कथं हरिणी,
नयने शयने पि न यासि।
विचित्र रुचे रचनं वचनं रसधाम,
सुधा मधुरं वद[3] भासि॥
समागत मद्य शुभे शरणां[4] चरणां,
पतितं न पतिं परि पासि।
जना[5] यहि कुप्यसि कुप्य तदा दयिते,
दयिते थ[6] कथं कुपितासि॥ ४२॥

अर्थ—हे आली! मौन अच्छा नहीं है! हे हिरन कैसे नेत्र वाली! शयनागार में क्यों नहीं चलतीं! विचित्र रुचि रचना एवं रस-धाम सुधा-समान-मधुर वचनों को कहो! हे शुभे! आज शरण को प्राप्त चरणों में पतित पति की रक्षा क्यों नहीं करती! (वाह! क्या आत्म समर्पण हैं) यदि भृत्य जनों पर क्रोध किया है तो

१—नु मौन (लि० सं० ६६ व ४४)। २—वर मालि (लि० सं० १४)—(लि० सं० १८२४) वनमालि (लि० सं० ४४)। ३—बहुभासि (लि० सं० ८६ व ४४)। ४—शरणे (लि० सं० १४)। ५—जनेयद्दि (अशुद्ध पाठ) (लि० सं० ४४) ६—नु० (लि० सं० १६४४)। सं० १८२४ की लिपि में यह श्लोक पहिले है।

भले ही करो! परन्तु हे प्रिये! मुझ (अप्रिय बना कर) पर क्यों कुपित हो रही हो। अर्थात् प्रसन्न हो जाओ।

टि०—यहाँ कामी वमी का क्या ही सुन्दर चरित्र सम्मुख रक्खा है!

अथ प्रौढ़ा धीरा धीरा यथा

* सवैया *

न किंचिद्लीक वचो वद वादक,
कामिह[1] कामुकनानु भवामि।
अवैमि तवापि सुखैक सखी मपि,
मामति[2] दूरत एव नमामि॥
यथापि भवानपराध[3] मयस्तु,
तथापि न पाद हतिं विद्धामि।
किमर्थ[4] मनर्थक लज्जसि सज्ज,
तदीय रतं सुमतं कथयामि॥ ४३॥

अर्थ—हे वृथा बोलने वाले (वकवादी)! मिथ्या वचन न कह हे कामुक! मैं उसे अनुभव नहीं करती ऐसा नहीं, किन्तु करती हूँ। तेरे सुख की एक सहचरी को भी मैं जानती हूँ। उसे मैं दूर से ही नमस्कार करती हूँ। आप अपराध युक्त हैं तौ भी मैं

१—काम कला मिहतेऽनुभवामि (लि० सं० ४४)। २—तामवि (लि० सं० ६६) तामपि (लि० सं० ४४)। ३—राध्यतिपस्य (लि० सं० ४४)। ४—किमर्थमनर्थक वाम्य सिरे वहुते सुरतं (लि० सं० १८६६ व ४४)।

तुम्हें पादाघात (लात) नहीं मारती हूँ। (यहाँ दया दर्शन कराया है) हे अनर्थक ! व्यर्थ क्यों लज्जा करता है तत्पर हो ! अर्थात् उसका जो अभीष्ट रति है उसको कहती है।

टि०—विना लात, घूंसे और डाट-डपट के ही काम निकालने वाली यह नायिका है परन्तु फटकार कमाल की है।

अथ मध्या प्रौढ़यो ज्येष्ठा कनिष्ठकत्वं लक्ष्यते

* दोहा *

अध्यून[1] प्रीतिक्रमा, ज्येष्ठा कनिष्ठि कापि।
भवति भर्तुरहा[2] सदृश गुण, वयास्य[3] परणीतापि॥४४

अर्थ—अधिक प्रीति के क्रम वाली का नाम ज्येष्ठा है और जिस में यह प्रीति न्यून हो वह कनिष्ठा कहलाती है। इस साहित्य में भर्ता के सदृश गुण और अवस्था वाली विवाहिता मानी जाती है अर्थात् अवस्था भेद से ज्येष्ठा अथवा कनिष्ठा का क्रम (नियम) नहीं है।

ज्येष्ठा कनिष्ठयो उदाहरणं

* सवैया *

दयितो[4] रमयन दयिता द्वयमप्यु-
भयोः परिपूर्य्य सुखं[5] सदृशं।

१—अन्यून (लि० सं० ४४)। २—भर्तुरिह (लि० सं० १४), ३—स्तु (लि० सं० ४४)। ४—दयतो (सं० १८२४)॥, ५—मुखं (लि० सं० ६६)।

तदपि प्रिय[1] वाचि मनोयुष[2],
योषित्त तस्य मनोरस[3] मेति भृशं ॥
प्रकटी कृत मध्य विलास मिषेण,
मुखं परिचुंव्य शनैर कृशं ।
त्वपरा[4] मुपहृय विधूय परां[5],
भुज[6] योर्विनिधायपिधाय[7] दृशं ॥४५॥

इति स्वीया ।

अर्थ—नायक दोनों (सपत्नियों) प्रियाओं के साथ रमण करता हुआ दोनों को सदृश सुख-युक्त परिपूर्ण करता है । तब भी मंजु भाषणी एवं मनोजुषी (मनको प्रसन्न करने वाली) रमणी में उसका मन अति शीघ्र अनुरक्तता (रति) को प्राप्त होता है । क्रीड़ा के वहाने से एक का परिचुम्बन करता हुआ दूसरी को बुला कर कंप-युक्त भुजाओं में भर कर नेत्रों को मींच कर महान सुख को व्यक्त किया । भाव यह है कि नायक दोनों नायिकाओं को समान प्रेम करता है, परन्तु एक मधुर बोलने वाली एवं मन को प्रसन्न करने वाली है उसे तो क्रीड़ा (खेल) के वहाने बुला कर प्रेमालिङ्गन करता है और दूसरी को भुजाओं में भर कर उसके नेत्र बन्द कर लेता है अर्थात् क्रीड़ा मात्र करता है ताकि

१—प्रियया वहुशः परितुष्यति तत्र (लि० सं० ४४) । २—जुषि (लि० सं० ६६) । ३—रम (लि० सं० ४६) । ४—अपरामुपहूय (लि० सं० ६६) । ५—तरा (लि० सं० ४४) । ६—(परार्य भुजं सं० १८२४) । ७—भृशम् (लि० सं० ४४) ।

वह यह न समझे कि मुझ से पूर्व उसने पहिली मंजुभाषिणी का चुम्बन कर लिया है।

अथ परकीयाभेदद्वयंलक्ष्यते

* दोहा *

पितुरधीन गतिरेव खलु, कथिता कन्या नाम।
उपपति रति रति गूढ़[1] गति, रूढ़ा वदति[2] स साम[3] ॥४६

अर्थ—पिता के आधीन जिसकी गति हो, निश्चय कार्यों की उपपत्ति में जिसकी रति हो और अति गूढ़ जिसका चलन हो (व्यवहार हो) उसे सकाम-ऊढ़ा कहते हैं।

टि०—पिता के घर रहती हुई अति छिपे हुए चलन से निश्चित क्रम के साथ जो रति-रहस्या होकर जीवन व्यतीत करती हैं उन्हें "ऊढ़ा" कहते हैं।

अथ कन्यका यथा

* सवैया *

कस्यनु[4]शस्यनरस्यमुखंसखि,
पश्यति तस्य[5] रुचिं विचिनोति[6]।

१—रूढ (लि० सं० ४४)। २—भवति (लि० सं० ४४)। ३—काम (लि० सं० ६६ व ४४ एवं १८२४)। ४—कस्य वरस्य (लि० सं० ४४)। ५—पश्य (लि० सं० ४४)। ६—वितनोति (लि० सं० ४४)। विचुनोति (सं० १८२४)।

चन्द्रमुखी सु वच[1] स्सुधया,
कमुदीत्य चकोरमिवाभि षुणोति[2] ॥
केय महो हृदि मोहकरी,
सुमुने[3] रविमानि मनो विधुनौति ।
सत्रप नेत्र विचित्र गतैः शत,
पत्रक[4] पत्र ततिं वितनोति ॥४७॥

अर्थ—हे सखी ! (यह नायिका) किस प्रशंसनीय मनुष्य के मुख का अवलोकन करती है और उसको किस हेतु से चाह रही है। हे चन्द्रमुखी ! अपने वचन रूपी सुधा से किसे चकोर की भाँति देख कर सिंचन (अभिषेक) कर रही है। यह कौन हृदय में मोह करने वाली चतुर मनुष्य के मनको भी कंपन कर देती है और लज्जा सहित नेत्रों की जो विचित्र गति है उससे कमल दलों की पंक्ति को विस्तृत कर रही है ।

टि०—नायिका के चटुल-नेत्रों और भावयुक्त युवा नायक को लज्जा सहित एवं खुले नेत्रों से देखने पर जो भावोद्रेक होता है उसका सखियाँ परस्पर कथन कर रही हैं ।

१—सुवचास्सु दृशाशाक मुदीप्य (लि० सं० ४४) । २—(सुनोति सं० १८२४)। ३—सुमते (लि० सं० ४४)। ४—शतपत्र पतत्रति (लि० सं० ४४) ।

अथ ऊढा लक्षणमाह

❀ सवैया ❀

गतासि सरः कुतुकेन सखि,
स्फुरितासि घनस्त्रवदंबुकणेन ।
मुखं किम पूर्व मुदश्रु दशा[1],
वचसा च विभासि विराम पदेन ॥
कथा कथया कथयाशु कथं,
श्लथ मद्य वपुर्ग्लथितं[2] पुलकेन ।
स वेपथु मन्मथ-मन्थरगे,
मथितं पथिकेन मनः पथिकेन ॥४८॥

इति परकीया ।

अर्थ—हे सखी ! तू तो क्रीड़ावश सरोवर को गई हुई थी और मेघ की पड़ती हुई बूँदों से क्या स्फुरित (पसीना लक्षित) होगई है। निकलते हुए आँसुओं की दृष्टि से मुख क्या विलक्षण होगया है, ठहर ठहर कर भी बोलती है। शीघ्र कह कि कौन सी कथा से तेरा शरीर ढीला पुलकायमान हो रहा है अर्थात म्लान—मुरझा गया है। हे काम की वशीभूत मन्दगामिनी किस पथिक ने मार्ग में तेरे मन को मथित कर दिया है ?

१—(अश्रुद्दशा सं० १८२४)। २—गलितं (लि० सं० १८६६)
यह सवैया लि० सं० १६४४ में नहीं है। शेष लि० सं० १४, ४१ व १८६६ में विद्यमान हैं।

टि०—सरोवर पर गई हुई नायिका के प्रति सखियाँ पूछती हैं कि मेह नहीं परन्तु पसीना कैसा है? मुख की कान्ति क्यों विलक्षण है? आँखों में आँसू क्यों हैं? ठहर ठहर कर क्यों बोलती है? शीघ्र बता क्या बात है कि शरीर शिथिल है? परन्तु पुलकायमान सा (गद्गद्) हो रहा है। क्या किसी पथिक से भेंट होगई?

अथ तस्याऽन्तर्भाव निरूपणम्

* दोहा *

गुप्ता वचन विदग्धिका, लक्षितापि कुलटा च।
अनुशयना मुदितेह परकीयान्तर भावा च[1] ॥४६॥

अर्थ—गुप्ता, वचन विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयना, मुदिता, यह परकीया के छः भेद हैं।

अथ गुप्ता लक्षणम्

* दोहा *

पर पुरुषस्य रतिं च या, गोपायति प्रमदेहि।
तां गुप्ताहि मनीषिणः कथयंतीत्यव धेहि[2] ॥५०॥

अर्थ—जो पर पुरुष की रति को छुपाती है उसे पंडित गण गुप्ता कहते हैं ऐसा जानो। अर्थात दुरछुप के विषयानुरक्ता का नाम गुप्ता है।

१—सं० १८२४ की लिपि में नहीं हैं। २—सं० १८२४ कीलिपि में नहीं हैं।

❀ सवैया ❀

अद्य मया तु कृतं गमनं नव,
कुंज कुटी निकटा मनु माय।
पत्रमदीय मुखे भ्रमराः
कलयन्ति रुतं जलजं तु विहाय॥
तैर्रदनच्छदनस्य रसः परि,
पीयत एव सुलक्ष्म विधाय।
हे सखि! तत्र न गन्तुमनाः
प्रभवामि कदापि सुमा वचयाय[1] ॥५१॥

अर्थ—नवकुंज कुटी को समीप ही अनुमान कर आज मैंने गमन किया। जहाँ भ्रमर कमल को त्याग करके मेरे मुख पर शब्द करने लगे। उन भ्रमरों ने ललित चिन्ह करके अधरोष्ठ का रस पी ही लिया। हे सखी! वहाँ अब मैं कभी पुष्प चयन (बीनने अथवा चुनने) के लिये मन न करूंगी अर्थात न जाऊंगी।

टि०—नायिका ने अधर-क्षत को छुपाने के लिये यह समस्त बातें बनाई हैं कि "जब मैं नवकुञ्ज कुटी में पुष्प चुनने गई तो भौंरे कमलों को छोड़कर मेरे ओठों से आलगे और रस पी ही तो लिया (चाहे पिया नायक ने ही हो) अब तुर्रा यह कि मैं भविष्य में फूल बीनने न जाऊँगी" ताकि यह बात सब सच्ची मानलें कि भौरों के भय से ही नहीं जाना चाहती।

१—सं० १८२४ की लिपि में नहीं है।

"शुश्रो क्रुध्यति विद्विष्यन्ति सुहृदो, निदन्तु वायातरः
तस्मिन किन्तु न मन्दिरे सखि पुनः स्वापो विधेयो मया
आखोरा क्रमणाय कोण कुहरा दुत्फाल मातन्वती
मार्जारी नखरै खरै कृतवती कां कां न मे दुर्दशाम्"

टि०—देव कवि का भाव उपरोक्त श्लोक से टक्कर लेता हुआ है।

अथवाग्विदग्धालक्षम्

* दोहा *

या पथिकस्य मनोहर त्युक्त्वा वहुवचनानि।
रमते तेन सहैव सा, वचन विदग्धाऽमालि[१] ॥५२॥

अर्थ—जो अनेक प्रकार के वचनों को कहकर पथिकों के मनको हरती है और साथ ही रमण भी करती है ऐसी नायिका को कविजन वचन विदग्धा कहते हैं।

वाग विदग्धोदाहरणम्

* सवैया *

भो पथिक! द्युमणौ परि चुंवति,
तं चरमाद्रि मतीव प्रकाशम्।
त्वं परिपश्य विधुर्गमने[२],
परिरभ्य निशां समुदेति सहासम् ॥

१—सं० १८२४ की लिपि में नहीं है। २—गगनेति पाठम्= (लि० सं० ६६)।

शोभि सरित्तद कुंज मिदं,
प्रतिभाति तथैव सयुक्ति निवासम्।
गंतु मना भव नापि च कुत्र,
विधेह्यु पवेशन मत्र विलासम्[1] ॥५३॥

अर्थ—हे पथिक! सूर्य अस्ताचल को जारहा है! चन्द्रमा आकाश में निशा को आलिंगन करके हास्य युक्त उदय होरहा है। उसे तू देख! यह नदी के तट-कुंज सुशोभित हैं। तुम्हारा निवास आज यहीं पर होना युक्तियुक्त पूर्ण है। आप अब कहीं अन्यत्र जाने की इच्छा न करें। यहीं पर विश्राम कीजिये अर्थात् आनन्द कीजिये।

लक्षिता लक्षणम्

* दोहा *

यस्याः सुरतं सखि जनैर्विदितं भवति तमां च।
तां सुमनीषी लक्षितां सततं वदति तरां च[2] ॥५४॥

अर्थ—जिसका सुरति सखियों पर प्रकट होजावे उसे विद्वान् सदैव लक्षिता कहते हैं।

अथ लक्षितोदाहरणम्

* सवैया *

हेवरवर्णिन! कज्जल वील,
रुचिं नय नस्य युगं निदधाति।

१-२—सं० १८२४ की लिपि में नहीं हैं।

विंव रदच्छदनं च विसृष्ट,
सुरागमवेहि सुधा मवयाति ॥
वक्षसि जौ कलितौ नखरैरुर,
सोपि सुगंधि रसं किलवाति ।
किं परिगोपयसि त्वमथो सुरतं,
तव शोभित नौ प्रतिभाति[1] ॥५५॥

अर्थ—हे उत्तम कान्ति वाली ! कज्जल की रुचि जिसमें नहीं रही ऐसे नेत्र युगल तू धारण कर रही है अर्थात् काजल रहित नेत्र हैं। जो कदाचित चुम्बन-चाट में उड़ गये हैं। अमृतके माधुर्य को गिराने वाला जो तेरा विम्बोष्ट है उसका राग नष्ट होगया है। कुच-द्वय नख चिन्ह युक्त होरहे हैं। वक्षःस्थल सुगन्धि को प्रकट कर रहा है अर्थात् रति आलिंगन के कारण उससे गन्ध की प्रतीत होती है। तू सुरत को क्यों छिपाती है ? अर्थात् तेरे सुशोभित शरीर में सुरत के सब चिन्ह प्रकट होरहे हैं ऐसा तू माने।

अथ कुलटा लक्षणम्

* दोहा *

कृत्वा बहुभिर्या रतिं तृप्तिं गच्छति नैव ।
तां कुलटां कलयन्ति किल कवयो द्रुतं तथैव[2] ॥५६॥

१-२—सं० १८२४ की लिपि में नहीं हैं।

अर्थ—जो वहुतों से रमण करके भी तृप्ति को न प्राप्त हो उसे कविगण कुलटा कहते हैं। अर्थात् वहुजन रमणीया का नाम कुलटा है।

अथ कुलटोदाहरणम्

* सवैया *

कस्य मनो न हरत्यधुना,
रभसादिह कस्य वचो न शृणोति।
कं प्रतिवीक्ष्य दृगम्बुजयो,
रपि हावगणैः सुरतिं न तनोति॥
कस्य लसद्भुजवल्लिकयेव,
तनुं परिरभ्य सुखं न सुनोति।
कं मदनस्य शरै रवला,
निशितैश्चलितं पथि सा न धुनोति[१] ॥५७॥

अर्थ—अब किसके चित्तको नहीं हरण करती। किसके वचनको नहीं सुनती, नेत्र-कमलसे किसे नहीं देखती। हावभावादिकसे किसे कामोद्दीपन नहीं करती शोभनशील भुजवल्लरीसे शरीर को आलिंगन करके किसको सुख उत्पन्न नहीं करती। अवला मदन के तीक्ष्ण (पैने) बाणों से मार्ग में चलते हुए किस पुरुष के मनको नहीं फँसाती। यहाँ काकोक्ति है अर्थात् वाला रमणी—उपरोक्त सब कुछ ही करती है।

१—सं० १८२४ की लिपि में नहीं है।

* दोहा *

संकेतस्थलतः पतिं गता गतं विनिरीक्ष्य।
खिद्यतेऽनुशयना वधूः स्थकिता परितोवीक्ष्य[१] ॥५८॥

अर्थ—संकेत स्थल (सहेट) से प्रिय को आकर गया हुआ जानकर जो चारों ओर ढूँढ़ने पर श्रान्त होजावे उस खेद करने वाली को अनुशयना कहते हैं।

अथोदाहरणम्

* सवैया *

काचिदियं दयितं परिवीक्ष्य,
समागत मेव-निकुंज कुटीतः।
वेणुकृतं कलयंत मथो,
विचकासत माशुचि पीत पटीतः॥
मंजुकरे दधतं जलजं,
विलिखन्तमथो धरणिं लकुटीतः।
सा स्वसितीह तदाश्रु,
विमुंचित नेत्रसरोवर चारु तटीतः[२] ॥५६॥

अर्थ—बाँसुरी बजाते हुये, पवित्र पीतपटसे सुशोभित, मंजुकरों में कमल-धारण किये हुये लकुटी (छड़ी) से पृथ्वी को कुरेदते हुए किसी निकुंज कुटी से प्रियतम (श्रीकृष्ण चन्द्र)

१-२—सं० १८२४ की लिपि में नहीं हैं।

को आकर गया जान वह (नायिका) सॉस (उच्छ्वास) लेती हुई नेत्र रूपी सरोवर से अश्रुपात करती है। अर्थात् अनुशयन (खेद) प्रकट करती है।

अथ मुदितालक्षणम्

* दोहा *

मनोभिलाषि चरित्रकं पथि सुपतिं दृष्ट्वेहि।
श्रुत्वा माद्यति या पुनर्मुदितां तामवधेहि[१] ॥६०॥

अर्थ—मनोवाञ्छित चरित्र वाले पति को मार्ग में देखने और उसके यश को सुनकर जो प्रसन्न हो उसे मुदिता कहते हैं।

मुदितोदाहरणम्

* सवैया *

काचि-दियं वनिता यमुना-तट-कुञ्ज,
गृहस्थ पुरः प्रतिभाति।
कैरपि चेह वचः प्रति श्रुत्य,
मदीयपतिः स्त्वरिस्त्वभियाति ॥
क्रोश युगं विनिरी[२]क्ष्यतुमुत्सव,
मारभ सा दिति चारु दधाति।

१—सं० १८२४ की लिपि में नहीं हैं। २—विनीरीक्षित (लि० सं० ८६) यह सं० १८२४ की लिपि में नहीं हैं।

तत्र समागत-नन्द-सुतं विनिरीक्ष्य,
मुदं हृदये निदधाति ॥ ६१ ॥

इति परकीया ।

अर्थ—कोई स्त्री यमुना तट के कुञ्ज-गृह के सम्मुख शोभायमान है। किसी से यह प्रतिज्ञात वचनों को सुनकर कि "मेरा पति शीघ्र ही दो कोस की दूरी पर उत्सव देखने के लिए जाने वाला है" ऐसी जिसकी अच्छी धारणा है वहाँ इतने में नन्द-सुत श्रीकृष्णचन्द्रजी को आया हुआ देखकर हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हो रही है अर्थात् अब सहसा पति के अनागम से अत्यन्त प्रफुल्लित है और नायक को वचनों से लुभा रही है।

टि०—इस बात का हर्ष है कि पति विद्यमान नहीं है अब परिरंभण में क्या रुकावट हो सकती है।

अथ सामान्या वनितालक्षणम्

* दोहा *

या धनमात्रसमीहनैं रन्य दीहते नैव।
सा सामान्या नायिका कथिता जैश्च सदैव[1] ॥६२॥

अर्थ—जो धन की इच्छा से अन्य की इच्छा न करे उसे सामान्या (वेश्या) स्त्री पंडितों ने सदैव कहा है।

१—यह सं० १८२९ की लिपि में नहीं है।

अथ सामान्योदाहरणम्

* सवैया *

वारवधू रियमद्भुत यौवन,
रूप कला कुशला रतिधाम।
कस्य महाधनदस्य[1] विलासि,
वरस्य सुधन्य तरस्य जगाम॥
प्रात रुपैति निजं सदनं,
विहसद्वदनं विकसन्मणिदाम।
दीप्तिमवेद्दय रुचा विजिता,
सखि[2] का चलिता वनिता न तलाम[3]॥६३

अर्थ—यह सामन्या स्त्री अनौखे रूप योवन और काम कला में कुशल है। किस बड़े विलासी, श्रेष्ठ, धनिक, और सुधन्य (पुण्य शील) के रत्यागार (रतिगृह) में जारही है और प्रातःकाल में निज गृह को प्रसन्न वदन, सुशोभित मणि युक्त किंकणी (कौंधनी करधनी) से प्रकाशित, रुचि से जीती हुई (विजित) हे सखी! यह कौन सी स्त्री है कि जो दुख को प्राप्त नहीं होती अर्थात् जिसे लज्जा रूपी दुख नहीं सताता अथवा लज्जित नहीं होती। यह परपति रतिका का लक्षण विशिष्ट है।

१—(धनकस्य सं० १८२४)। २—सखि का वनिता विन नाम न नाम (लिं० सं० १९१४)। ३—(विनता विन माम सं० १८२४) सं० १८२४ की लिपि में यह श्लोक ४९ वाँ है।

अथ स्वीया परकीया सामान्याभेदाः

* दोहा *

एता स्तिस्त्रो नायिकाः पुनस्त्रिधा विलसन्ति ।
गर्वितान्य रतिदुःखिता मानिन्यः प्रभवन्ति[१] ॥६४॥

अर्थ—यह तीनों प्रकार की नायिकायें तीन प्रकार से सुशोभित होती हैं जिन्हें गर्विता, अन्य रति दुक्खिता और माननी कहा जाता है ।

अथ गर्वितालक्षणम्

* दोहा *

रूप प्रेम गुण गर्व मिह या धत्ते मनसा च ।
विद्भिः परिकथ्यते तमां गर्विता सा च[२] ॥६५॥

अर्थ—जो रूप, प्रेम, और गुण इनके "गर्व" को मन से धारण करती है उसे विद्वानों ने गर्विता कथन किया है ।

गर्वितोदाहरणम्

* सवैया *

अन्यतरं रचयन्ति सदा,
निजदारतनौ किल भूषण वृन्दम् ।
कर्णयुगे कलयन्ति दलांः,
समनां कमलेन सहैव सनन्दम् ॥

१-२—यह सं० १८२४ की लिपि में नहीं है ।

श्रीफलवकुचयोर्विसृजंति,
सकेशरसेकमपीद ममंदम् ।
हे सखि मत्तनु द्रष्टुमनाः,
पतिराभरणं न दधाति हि शंदम्[1] ॥६६॥

अर्थ—कुछ (अन्य) पुरुष अपनी स्त्रियों के शरीर में भूषणों की रचना करते हैं अर्थात अंग राग करते हैं दोनों कानों में कमल दल के साथ मन्दता युक्त नेत्रों की समानता धारण करते हैं अर्थात् कानों में कमल दल नेत्रायत के प्रतिद्वन्द्वी पहनाते हैं। श्रीदल के समान कुचों पर केशर का (सेक) अर्थात् लेपन या सेचन गहरा अंग राग कर रहे हैं । परन्तु, हे सखी ! मेरे शरीर को देखने और मन से रति करने वाला मेरा प्रिय उन शान्ति देने वाले आभरणों को धारण नहीं कराता अर्थात मेरा पति मुझे कृत्रिम आभरणों (आभूषणों) की रचना से प्रसन्न नहीं करता किन्तु स्वभाव से ही मोहित है इसमें तीनों का एक साथ लक्षण देवकवि ने किया है ।

अथसुखदुखिता लक्षणम्

* दोहा *

स्वप्रियेण साकं रतिं यान्यस्त्रिया निरीक्ष्य ।
ब्रूते क्लिष्ट वचोऽन्यरतिदुःखिताहि तां वीक्ष्य[2] ॥६७॥

१-२—यह सं० १८२४ की लिपि में नहीं है ।

अर्थ—जो अपने प्रियको अन्य स्त्री के साथ रतयुक्त देख कर कठोर वचनों (शब्दों) को कहे उसे अन्य रति दुःखिता कहते हैं।

उदाहरणम्

*** सवैया ***

निर्गत कज्जलनेत्रयुगं,
परिमृष्ट सुराग मभीष्टमवेहि।
धौतमहो किल केसरसेक,
मुरोजतटे नखराणि निधेहि॥
तन्वि तवैव वपुः प्रतिभाति,
पुनः पुलकांकयुतं च सुदेहि।
तत्कलयामि विगाकुमपे,
सुखदेषु सरस्सुगता किमपेहि[१] ॥६८॥

अर्थ—दोनों नेत्रों से कज्जल निकल गया है। अंग राग भी पुछ गया है अर्थात् छूट गया है। इच्छित (वाञ्छित) अधर (ओष्ठ) भी धुल गये हैं अथवा रस रहित हैं। उरोज तट (कुचों) पर अंगराग के स्थान में नख चिन्ह हो रहे हैं। हे तन्वी! तेरा शरीर शोभनशील पुलकायमान गद्गद (हर्ष युक्त) हो रहा है। इससे मैं जानती हूँ कि सुख के देने वाले सरोवर पर स्नान

१—[illegible] सं० १८२४ की लिपि में नहीं है।

करने के लिये तू गई ही क्यों ? झूठ बोल रही है। यहाँ व्यंगके के साथ सखी का वचन सखी से है।

अथ मानिनीलक्षणम्

* दोहा *

प्रियापराधं वीक्ष्य या मानं मनसि दधाति ।
प्रज्ञस्ता मिह कामिनी मानिनीं च विख्याति[1] ॥६९॥

अर्थ—जो प्रिय के अपराध को देख कर मान को ग्रहण (धारण) करे उस कामिनी को विद्वान् मनुष्य माननी कहते हैं।

मानिनी उदाहरणम्

* सवैया *

प्रात रुपागत एव सुकृत्य,
पर प्रमदारदनच्छदपानम् ।
निद्रित चक्षुषि संदधसीत्युरसि,
द्रुत कंस्वरमश्रु निदानम् ॥
नो कुरु मन्युमयीष्ट मतौ सुगृहाण,
धनं च विधेहि सुगानम् ।
त्व चरणाम्वुजयोः पतिते दयिते
दयिते त्वधुना त्यज मानम्[2] ॥ ७० ॥

इति जात्यादि भेदाः ।

१-२—यह सं० १८२४ की लिपि में नहीं है।

अर्थ—कोई पुण्यवान पुरुष प्रातःकाल अपर स्त्री के अधरोष्ठ को पान करके आया अलसाये हुये नेत्रों में मूल कारण वश (रात के समय न आने के कारण) आँसू भरकर गद्गद् कण्ठ युक्त स्वर को धारण करता हुआ कहने लगा कि मैं तेरे ही अनुकूल हूँ मुझपर क्रोध न कीजिये और यह धन लो एवं गाना गाइये और चरणों में गिरे हुये प्रियवर से हे प्राणप्रिये ! अब मान न कर अर्थात् मान का त्यागन करो। यह वेश्या माननी का लक्षण है।

टिप्पणी—श्लोक सं० ४९ से लेकर ७० तक अर्थात् २१ श्लोक लिपि सं० १९१४, व लिपि सं० ४९ में नहीं हैं यह केवल सं० १८३६ व १९४४ में ही हैं।

अथ तासामवस्थाभेदाः कथ्यते

* दोहा *

प्रोष्यतः पति रार्गतपतिरुत्कंठिता तथैव ।
कलहांतरिता खंडिता विप्रलब्धिका चैव[2] ॥ ७१॥

अर्थ—प्रोषित पतिका, आर्गत पतिका, उत्कण्ठिता, कलहंतरिता, खण्डिता और विप्रलब्धा ।

१—प्रोषित पतकागत (लि० सं० १९१४) । २—सं० १८२४ की लिपि में यह दोहा ७० वाँ है।

वासक सज्जाभिसारिकावस्थभेदा:

* दोहा *

वासक[1] सज्जाभि सारिकावस्था भेदासन्ति ।
तासामित्यष्टौ यथा वस्थेन प्रभवन्ति[2] ॥ ७२ ॥

अर्थ—वासक सज्जा, अभिसारिका अब इन आठों के यथा क्रम भेदों को कहते हैं ।

अथ प्रोषितपतिका लक्षणम्

* दोहा *

पतिर गमदत्वाऽवधिं यस्याः परदेशन्तु ।
प्रोषित[3] पतिरति[4] कोविदा स्तन्ना मोपदिशन्तु[5] ॥७३॥

अर्थ—जिसका पति अवधि नियत करके परदेश गया हो उसको पण्डित जन प्रोषित पतिका कहते हैं ।

१—वासक सज्जेति च तथा अभिसारिके तिच सन्ति । भेदा इत्यष्टो यथा वस्थास्तु प्रभवन्ति लि० सं० १८६६ सं० १६१४४ । २—यह सं० १८२४ की लिपि में यह दोहा ५१ वाँ है । ३—प्रोष्यति (लि० सं० ६६ व ४४) । ४—रिति (लि० सं० ६६ व ४४) । ५—सं० १८२४ की लिपि में यह दोहा ५२ वाँ है ।

अर्थ—कोई पुण्यवान पुरुष प्रातःकाल अपर स्त्री के अधरोष्ठ को पान करके आया अलसाये हुये नेत्रों में मूल कारण वश (रात के समय न आने के कारण) आँसू भरकर गद्गद् कण्ठ युक्त स्वर को धारण करता हुआ कहने लगा कि मैं तेरे ही अनुकूल हूँ मुझपर क्रोध न कीजिये और यह धन लो एवं गाना गाइये और चरणों में गिरे हुये प्रियवर से हे प्राणप्रिये ! अब मान न कर अर्थात् मान का त्यागन करो। यह वेश्या माननी का लक्षण है।

टिप्पणी—श्लोक सं० ४६ से लेकर ७० तक अर्थात् २१ श्लोक लिपि सं० १६१४, व लिपि सं० ४६ में नहीं हैं यह केवल सं० १८६६ व १६४४ में ही हैं।

अथ तासामवस्थाभेदाः कथ्यते

* दोहा *

प्रोष्यत[1] पति राधीनपनिरुत्कठिता तथैव ।
कलहांतरिता खंडिता विप्रलब्धिका चैव[2] ॥७१॥

अर्थ—प्रेपित पतिका, आधीन पतिका, उत्कण्ठिता, कलहंतरिता, खण्डिता और विप्रलब्धा।

१—प्रोपित पाठान्तरम् (लि० सं० १६१४)। २—सं० १८२४ की लिपि में यह दोहा ४० वाँ है।

वासक सज्जाभिसारिकावस्थभेदाः

* दोहा *

वासक[1] सज्जाभि सारिकावस्था भेदासन्ति ।
तासामित्यष्टौ यथा वस्थेन प्रभवन्ति[2] ॥ ७२ ॥

अर्थ—वासक सज्जा, अभिसारिका अब इन आठों के यथा क्रम भेदों को कहते हैं।

अथ प्रोषितपतिका लक्षणम्

* दोहा *

पतिर गमदत्वाऽवधिं यस्याः परदेशन्तु ।
प्रोषित[3] पतिरति[4] कोविदा स्तन्ना मोपदिशन्तु[5] ॥७३॥

अर्थ—जिसका पति अवधि नियत करके परदेश गया हो उसको पण्डित जन प्रोषित पतिका कहते हैं।

१—वासक सज्जेति च तथा अभिसारिके तिच सन्ति। भेदा इत्यष्टो यथा वस्थास्तु प्रभवन्ति लि० सं० १८६६ सं० १९१४४। २—यह सं० १८२४ की लिपि में यह दोहा ५१ वाँ है। ३—प्रोष्यति (लि० सं० ६६ व ४४)। ४—रिति (लि० सं० ६६ व ४४)। ५—सं० १८२४ की लिपि में यह दोहा ५२ वाँ है।

अस्योदाहरणम्

* सवैया *

आशुभिरेव[१] पुरा चलितं,
वलयै रपि चाशु गतेद्नपाने[२] ।
बुद्धिरयापि[३] भतोपि गतं,
विमुखं च सुखं सखि नाथ प्रयाने[४] ॥
किं किमगान्न परन्तु तनाविह,
दुःख मपैतिन[५] दुःख निधाने[६] ।
नष्ट गतिः निरपत्रप एष[७] जनो,
न गतस्त दहं तु न जाने[८] ॥७४॥

अर्थ—पहिले आँसू चले, कंकण ढीले होगये अर्थात खिसकने लगे। बुद्धि भी चलित होगई। गति भी नष्ट हो चुकी। मन भी चला गया। हे सखी ! प्रिय के जाने पर सुख भी विछुड़ गया (विमुख होगया) और क्या क्या न गया अर्थात् सब कुछ चला गया। परन्तु दुख का कोष मुझमें से यह दुख (विरह) न

१—अश्रुभिरेव (लि० सं० १६४४ व ६६)। २—गतेऽदयपाने (लि० सं० ४४)। ३—सं० १८२४ (बुद्धि रथापि)। ४—प्रयाणे (लि० सं० ४४)। ५—मुपैतिनु (लि० सं० ४४)। ६—नधाने (सं० १८२४)। ७—परापत्र एष (लि० सं० ४४)। ८—सं० १८२४ की लिपि में यह ५२ वाँ है।

गया। निर्लज्ज यह जन (मेरा स्वयं प्राण) न गया। मैं नहीं जानती कि यह ऐसा क्यों हुआ।

अथ आधीन पतिका

❀ दोहा ❀

यद्धीन पतिरधिवसति यद्भि मतं विद्धाति।
सैवाधीन[1] पतिः सचेद् परां जातु न याति[2] ॥७५॥

अर्थ—जिसके आधीन पति रहे पति अन्य से सम्भोग करने वाला न हो और उसी (नायिका) के मन के अनुसार ही चले अर्थात् कार्य कलाप करे उसे स्वाधीन पतिका कहा जाता है।

उदाहरणम्

* सवैया *

भर्त्तुं रतिप्रियकर्त्तुं रिह,
प्रमदा सुखदा नहि कानि भृतं।
प्रेम[3] परंत्व नयो रिव,
कुत्रचि दीक्षित मेव मया न धृतं॥
येन कृतेन कृतं सकलं,
सखि तत्व नयैव[4] कृतं सुकृतं।

१—यह सं० १८२४ की लिपि में यह ५४ वाँ है। २—पाति (लि० सं० ४४)। ३—यह सं० १८२४ (पर्म पाठ है)। ४—न (लि० सं० ४४)।

यद्वशगः पतिरेष सुखस्य,
निरन्तर मेव पिबत्य मृतं ॥७६॥

अर्थ—अति प्रिय करने वाले पति (प्रेमी पति) से कौन सी स्त्री पोषण नहीं की जाती अर्थात् प्रेमी पति स्त्रियों की अभिलाषा पूर्ण करते ही हैं। और उससे सब प्रेम करती हैं। मैंने ऐसी प्रेमभरी परस्पर दृष्टि युक्त और (स्त्री) अन्यत्र नहीं देखी कि जिस तेरे इस कृत्य ने सब कुछ कर लिया है। और हे सखी! इसीने सुकृत किया है जिसके वश में रहने वाला प्रिय (पति) मुखामृत को निरन्तर ही पान करता है। यह स्वाधीन पतिका का लक्षण है सखी का वचन सखी के प्रति है।

अथ उत्कण्ठितालक्षणम्

* दोहा *

वाराहनि केलि[1] गृहे यस्या न यति[2] रुपैति।
शोचंती तदनागमन, मुत्कण्ठिता भवेति ॥ ७७ ॥

अर्थ—वारीं के दिन (ओसरे पर) क्रीड़ा-गृह में जिसका पति आवे और उसके न आने (अनागमन) पर जो शोच करती है उसे उत्कंठिता कहते हैं।

१—वाराह निकेली (लि० सं० १४)। २—नयति (लि० सं० २४) वाराहणि केलीगृहे (लि० सं०)

उदाहरणम्

* सवैया *

किमुदीक्ष्य[1] विभाय घनं सघनं,
तमसा पथि बुद्धिरथ भ्रमिता ।
गुरु गर्जित वर्जित एव तडिद्युत,
तर्जित एव च कै[2] र्नमिता ॥
कथमद्य[3] गृहेऽत्र स आगत,
आलि न कुत्र च रात्रि रहो गमिता ।
रमने न[4] मनोरम रु क्रमनी[5],
रमणी रमणीयतरा रमिता ॥ ७८ ॥

अर्थ—कुछ विशेष बात देखकर किम्वा घन (बादल) को देखकर अथवा मार्ग में अन्धकार के कारण भ्रमित बुद्धि होने से या गम्भीर गर्जना से, विद्युत की चमक से भयभीत होकर छुपजाने के कारण कहीं रुक गया है क्या ! हे सखी ! आज वह घर क्यों नहीं आये । अहो ! आश्चर्य है कि रात्रि कहाँ व्यतीत कर दी । कहीं ऐसा तो नहीं है कि प्रिय किसी रूपमणि (अत्यन्त

१—किमुदीक्ष्य घनाघनमऽत्र घनम् (लि० सं० ४४) । २—चवा (लि० सं० ४४) । ३—कथमद्यगृहे प्रिय (लि० सं० ४४) ४—सं० १८२४ की लिपि में (रमसो न मनोरम) है । ५—रमणेननु कापि सुरूपमणी (लि० सं० ४४) ।

रूपवती) अत्यन्त रमणीय किसी रमणी (सुन्दरी) को रमने में लग गये हों !!

नोट—नायिका पति के अनागम के कारण नाना प्रकार के कल्पना जाल में फँस रही है उसी की मनोभावना का यह चित्रण है।

अथवासकसज्जा

* दोहा *

प्रियागमं निश्चित्य या सानन्दं सहसैव।
रचयति भूषा वेशमपि वासक सज्जा सैव ॥ ७९ ॥

अर्थ—जो प्रियतम के आने का निश्चय करके आनन्द से भूषा अकस्मात् ही बनाने में लग जावे उसे वासक सज्जा ते हैं।

उदाहरणम्

* सवैया *

षणवेषविशेष विधिं विविधं,
तु विधाय विधातु मपीच्छित।
कुं[1] चन[2] कुंचित कुंचित[3] हक,
च कितेव वपुः स्फुरणानि प्रतीच्छति ॥

टिप्पणी—इस श्लोक का द्वितीय चरण लिपि सं० १९१४ की प्रति में नहीं है परन्तु सं० १८६६ व ४४ में विद्यमान है।

१—किंचिद कुञ्चित हृच्च कितेव १८६६। २—(किंचिद सं० १८२४ की लिपि में है)। ३—कुञ्चित दृच्च कितेव सं० १८२४ की लिपि।

निर्मित भाल लसत्तिलकं,
विलसन्मुकरे भि लसन्मुखमीक्षित ।
सायमसौ समनोरथ मिष्ट,
समागमने समयं समुदीक्षति ॥ ८० ॥

अर्थ—नाना प्रकार के आभूषण और वेष की रचना के जो विशेष प्रकार हैं उसको विधान कर चुकी और शेष को कर रही हो। अर्थात् भाल में शोभा युक्त तिलक बनाती है। दर्पण में प्रसन्न वदन को देख रही है तथा कुछ अधखुले नेत्रों से चकित हा देखकर शरीर में स्फुरण (फड़कने) की क्रिया हो रही है। नायक के आगमन की प्रतीक्षा में दत्त-चित्ता एवं सायंकाल में मनोर्थ युक्ता प्रिय समागम की प्रतीक्षा-सलग्ना का यह लक्षण है।

नोट—काम शास्त्र में स्फुरण (शरीर के फड़कने) को शुभ शकुन एवं प्रिय प्रदर्शन का लक्षण कहा है।

अथ कलहान्तरिता लक्षणम्

* दोहा *

पतिमवमत्य पुनर्महा दुखं मनसिज गाम ।
सा कथिता कवि कोविदैः कलहान्तरिता नाम ॥८१॥

अर्थ—पति का अपमान करके मन में घोर दुःख का अनुभव करने वाली को पंडितों ने "कल हन्तरिता" कहा है।

उदाहरणम्

* सवैया *

परीत्य[१] पुनः पुनरेव धुनोति,
शिरो यदि शोक मुपा[२]श्रयितः ।
कथयत्युदिताश्रु रहो कथ-
मध्य व ताभि[३] मतोपि महानयितः ॥
किमकार्य व मानित ईहितसद्मनि,
यत्र मनः[४] सततं लयितः ।
प्रियवल्लभ एष ·विनष्टधिया,
स मया सखि निर्दय[५]या दयितः ॥८२॥

अर्थ—परिताप (पश्चाताप) करके बारम्बार सिर को धुनती है और शोकाकुल होती है। अश्रुपात होरहे हैं और कहती है कि आज मैंने अपने अभीष्ट (प्रिय पति) को क्यों जाने दिया ? उस अपने घर में आये हुये पति को मैंने अपमानित किया यह क्या किया ! जिसमें मेरा मन सदैव संलग्न था। हे सखी ! मुझ मन्द बुद्ध निर्दय ने प्रिय प्राणवल्लभ का तिरस्कार किया यह क्या किया !! "करके पछतावा इसे ही कहते हैं।"

१—तरितस्य पुनः १८२४ परितप्य (लि० सं० ४४)। २—उपः रमिता (लि० सं० ४४)। ३—कथ मद्यवताद्भिमतो (१८२४)। ४—जनः (लि० सं० ४४)। ५—भिर्दय (लि० सं०४४)

अथ खण्डिता लक्षण माह

* दोहा *

नायातो[1] यद्वासके पतिरन्या संभुज्य[2] ।
सा खंडिता यदा गतस्तच्चिन्हानि नियुज्य[3] ॥८३॥

अर्थ—अन्य रमणी से सम्भोग करके जिसका पति घर आवे और अन्य स्त्री के चिन्हों से युक्त भी हो तो उसे खंडिता कहते हैं।

टि०—यहाँ पर अंगराग युक्त होने का नाम "चिन्हित" होना है। यथा—विहारी

"पट सों पोंछ परी करो खरी भयानक वेस।
नागिन-सी लागति हिये नागवेल की रेख ॥ १ ॥
पलक पीक अंजन अधर-मांग महावर भाल।
मुकर जाहुगे पलक में मुकुर विलोकहु लाल ॥ २ ॥

उदाहरणम्

* सवैया *

कृतजागर[4] एव वने निवसन्न,
जयो निशि कामद मत्र मत्तं ।

१—नायातः संकेति ते ति पाठान्तरम् (लि० सं० ४४)। २—भुज्ज (१८२४)। ३—निशुज्ज (१८२४)। ४—कृत आगर ऐव वनेन्य वसः प्रजयन (लि० सं० ४४)।

सततं समतापि[१] तपस्सुतरा,
मुदयादि मनोभव देव बलं ॥
जन नाथ जन श्रवसी[२] श्रवणे,
न पुनाति तवाद्य यशो विमलं ।
किम[३] लाभि तदैव विभो भवता–
खिल सिद्धि समृद्धि सुखैक फलं ॥८४॥

अर्थ—जागरण करके, वन में रहकर, कामद (काम के देने वाले) महा मंत्र का जप किया । तब भी सदैव तपा और मनोभव देव (काम) का बल प्राप्त किया । हे जन नाथ ! मनुष्यों के कानों कानों यह आपका विमल यश उन्हें पवित्र कर रहा है अतः अखिल सिद्धि और समृद्धि के सुख के परिपक्व फल को आपने प्राप्त कर लिया है।

अथ विप्रलब्धोदाहरणं (लक्षणानि)

* दोहा *

दत्वा संकेतं स्वयं तत्र नयति रूपयाति ।
विप्र लब्धिका तत्प्रिया गत्वा सुखं जहाति ॥८५॥

१—सततं समता मदनेन तथा समयादि (लि० सं० ४४)।
२—श्रवणे (लि० सं० ४४)। ३—कृतमद्य विभो भवताऽखिल सद्ध समृद्धि सुखैक गण्यं सुफलं (लि० सं० ४४)।

अर्थ—पति स्वयं संकेत करके जहाँ न आवे, इस प्रकार सुख के विसर्जन करने वाली उस प्राणवल्लभा को विप्रलब्धा कहते हैं।

उदाहरणम्

* सवया *

प्रियप्रेषितदूतिकयैत्य कृतो,
वचनै रनुरागभरः प्रचुरः।
समभूदभितोऽथ वियोगि विवर्जि[1],
पयोधर गर्जि रवो मधुरः॥
अभिसृत्य[2] तदा तमवेद्य पतिं,
न तु दूरत एव च कंप उरः।
किलन[3]स्स[4]निवर्त्तत एव वधू र्न च,
तिष्ठिति नस्म च चालपुरः॥८६॥

अर्थ—प्रिय की भोगी हुई यह पृथ्वी है। इस प्रकार अनुराग भरे उसने अनेक वचन कहे! तदुपरान्त चारों ओर से विरहियों को रोकने वाले मेघ की गर्जना भी हुई परन्तु जाकर के वहाँ (संकेतस्थाल) पर उसने प्रिय को न देख और दूर से ही हृदय काँपने लगा (तब) न वह लौटी, न आगे बढ़ी अर्थात् स्तम्भित सी रह गई।

१—पितर्जि (१८२४)। २—अभि सृत्यतदासु समीक्ष्य (वि० सं० ४४)। ३—नस्मि (१८२४)। ४—स्म (वि० सं० ४४)।

अथाभिसारिका

* दोहा *

क्षिप्त्वा[१] पतिं मदेन च व्यथित[२] मदन शरेण ।
याभि सरत्याभि[३] सारिका कथिता सुकवि वरेण ॥८७

अर्थ—मद (प्रमाद) से पति का तिरस्कार करके काम बाण से पीड़ित (कामातुर) होकर जो जाती है उसे कवि लोग अभिसारिका कहते हैं।

टि०—अभिसारिका का यह लक्षण प्रचलित ग्रन्थों में नहीं पाया जाता परन्तु "रुद्रट ने" अलंकार संग्रह में ऐसा ही लिखा है।

अस्योदाहरणम्

* सवैया *

साय[४]मसौ रतिकुंज गृहे सखि,
गच्छति शंभुरिपोर वलेव ।
नील रुचांबर के न[५] वृता कल-
धौत कलद्युति रिन्दु कलेव ॥

१—क्षप्त्वा पतिं सं० १८८६ । क्षिप्रेमति मदनेन (लि० सं० ४४) । २—व्यथिता (लि० सं० ४४) । ३—समऽभि सरत्यभिसारिका । ४—सारम् (१८२४) । ५—ण (लि० सं० ४४) ।

की दृग शोभित मालतलोप-
विशत्युपमा[1] स तदा सकलेव ।
श्याम घनैः सघनैर्मिलिता,
तमसा गिलता चलिता चपलेव ॥८८॥

अर्थ—सायंकाल में रति-कुंज-गृह (सहेट) में हे सखी ! कामदेव की स्त्री (रति) के सदृश जाती है और तमाल वृक्ष के नीचे वैठी सुशोभित है । उसकी पूर्णोपमा यह है कि मानों स्वर्ण की सुन्दर-कान्ति चन्द्रकला की भाँति नीलवर्ण अम्बर में रक्खी हुई है और सघन श्याम घनों से मिली हुई अंधकार से आवृत मानो विद्युत (विजुली) के समान जारही है ।

टि०—"मरकत भाजन सलिल गति, इन्दुकला के वेप" वाला भाव है ।

इत्यवस्था भेदाः

अथ नायिकभेदाः कथ्यते

* दोहा *

अनुकूलोपि[2] च दक्षिणो, धृष्टोथ च शठ एव ।
भवति चतुर्द्धा नायकः सवर्णय कविदेव ॥८९॥

१—विशत्युपमातु तदा सकलेव (सं० ४४) । २—अनुकूलो दक्षस्तथा धृष्टाः शठनर एव (लि० सं० ४४) ।

इति संक्षेपेणनायिकानां मुख्यभेदाः ।

अर्थ—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, और शठ यह चार प्रकार के नायक होते हैं जिनका वर्णन कवि देव ने किया है।

अथानुकूलम्

* दोहा *

सदैवैकनारीरतः सोनुकूल इत्येव।
दक्षः सर्वं वधूष्वथो सम प्रीति रति[1] रेव ॥६०॥

अर्थ—जो सदैव एक नारी में ही अनुरक्त रहता है वह अनुकूल और सब स्त्रियों में सम-प्रीति करे वह दक्षिण कहलाता है।

अथानुकूलोदाहरण

* सवैया *

किं न कृतं सुकृतं त्वनया,
किम तापि तपो नहि पातक पाति[2]।
किं किम कारि न किं किमदायि,
यतस्त्विदं[3] सर्वमदः प्रतिभाति॥
शक्ति मिवाद्भुत भक्तियुतस्स,
विनौति मनोभि मतं विदधाति।

१—कर एव (लि० सं० ४४) २—घाति १८६६। ३—किं किम कारि न किम किमदायि न सर्वं मदः शुभ दम् प्रति भाति (लि० सं० ४४)।

धन्य तरोऽय मनन्य गतिर्दयि,
तो दयितो दितमेव ददाति१ ॥६१॥

अर्थ—इसने क्या सुकृत नहीं किया अर्थात् सब पुण्य किये हैं और पातकों को पतन करने वाला कौनसा तप नहीं तपा अर्थात् सब तप भी तपे हैं। क्या क्या नहीं किया और क्या क्या नहीं दिया अर्थात् सब तप और दान किये ऐसा स्पष्ट ही है। शक्ति में अद्भुत भक्ति रखने वाले की भाँति यह प्रिय (शाक्त) सर्वथा नमस्कार (अनुनय) करे और मेरे मन की ही इच्छा करे तथा अन्य में गति न रखने वाला यह धन्यतर (श्रेष्ठ) है जो प्रिया के कहे हुए को ही मानता है।

दक्षिणोयथा

* सवैया *

दक्षतया रमयन स उभे,
परिगोप्य मनोऽपि मनोज विधूतं।
कामपि वीक्ष्य कुतोपि दृशंत्वित२,
रक्षियि३ चक्षुरदाद्र स भूतं॥

१—दधाति (लि० सं० ४४)। २—सरोज दृशम् (लि० सं० ४४)। ३—क्षितिरश्रिय चक्षुरा दायि सभीतम् (लि० सं० ४४)।

सं परि चुंव्य तदीय मुखं,
नमयन्सहकार तरु मधु दूतं।
लिंगितवानवलोक्य[1] परा,
मपरामवलोकयतीमुत नूतं ॥६२॥

अर्थ—वह चतुरता से उभय रमणियों में विलास करता हुआ काम से कंपित मन को गोपन कर (छिपा) रहा है अर्थात् कहीं ऐसा न हो कि एक की दूसरे पर प्रेम की क़लई खुल जावे। किसी एक कमल-नयनी को देखते हुए भी दूसरी स्त्री (मृगाक्षी) में रस-प्रचुर (रस भरी) आँखों से देखता है। बसन्त दूत अर्थात् आम के वृक्ष की डाली को नवाने के मिस (बहाने) झुकता हुआ एक का चुम्बन करता है और दूसरी को आलिङ्गन—अर्थात छाती से लगाता है।

शठ धृष्टौ यथा

* दोहा *

कपटस्नेह प्रकटितः शठस्तु धृष्ट इतीह।
निश्शंकेतिरपत्रपो[2] हतः सदोपो पीह ॥६३॥

अर्थ—जो कपट-स्नेह दिखलावे वह शठ नायक एवं निर्लज्ज तथा निःशंक, सदोप और ताड़ित होता हुआ धृष्ट कहा जाता है।

१—अवलोक्य (लि० सं० ४४)। २—निश्शंको निरपत्रपो १८६६।

अथ शठो यथा

* सवैया *

प्रातरपाकृत एव मयाकृत,
दोष भरः कथयन्नहि नेति ।
किं किमहं कथयामि यदस्य,
कदापि न सत्य वचस्स।[1]मुदेति ॥
नित्य मसौह्दिवसे[2] निव,
सन्निह निस्य[3] परत्रकुतो[4] न विभेति ।
शित्तय संप्रति तं प्रति,
किं करवाणि स किंकिरवत पुनरेति ॥६४॥

अर्थ—अनेक अपराध युक्त "ना" "ना" ऐसा कहने वाला (अर्थात् मैं अन्यत्र नहीं गया) मैंने प्रातःकाल ही तिरस्कृत किया अर्थात् उसे फटकार दिया—भगा दिया । मैं उसकी कौन कौनसी बातों को कहूँ । कभी भी सच नहीं बोलता, दिन में तो नित्य यहां रहता है और रात्रि में दूसरे स्थान में जाने में निडर है अर्थात् क्यों नहीं डरता । (हे सखी) अब तू ही शिक्षा दे (बता) कि उसके लिये क्या किया जावे वह किंकर (नौकर) की भाँति बार बार आ जाता है ।

१—वचः (लि० सं० ४४) । २—"दि" अक्षर लि० सं० ६६ व ४४ में नहीं है । ३—निश्य (लि० सं० ६६) । ४—रपत्रप एव कुतो न विभेति (लि० सं० ४४) ।

अथ घृष्टोदाहरणम्

* सवैया *

चित्र मिदं किमुदर्शयसि,
त्वदतीव[१] विचित्र मुखत्वनु रूपं ।
भाल तले तुलरुक् तिलकं[२],
जयतीह मनोज यशो जययूपं[३] ॥
की दृगिदं निशि जागरणा,
रुप[४] घूर्णित नेत्र युगं रुचि[५] भूपं ।
अद्य तनं त्वनवद्य तनोति,
सुखं[६] मम सद्य उपदीप्य[७] सुरूपं ॥९५॥

अर्थ—तेरा मुख अतीव विचित्र क्यों दिखलाई दे रहा है? यह अद्भुत है कि भाल-तल में लाक्षा-रस (महावर) का तिलक लग रहा है। वह मानो कामदेव के यश के जय-स्तम्भ को मानो विजय कर रहा है। रात्रि में जागरण से रक्त (लाल) और घूमते हुए दोनों (चटुल) नेत्र कान्ति के राजा हो रहे हैं। हे अनवद्य! आज के सुख-स्वरूप को सद्य (तत्काल का ही)

१—त्वमतीव (लि० सं० ४४)। २—भाल तलेतुलसत्तिलकं (लि० सं० ४४-६६)। ३—रूपम् (लि० सं० ४४)। ४—जागरणारुण १८२४। ५—स्मर रुपम् (लि० सं० ४४)। ६—मुखं १८२४। ७—उद्दीप्य (लि० सं० ४४)।

देख कर—इसलिये आज तक तो तैंने झूंठ बोला (परन्तु अब क्या कहता है) अर्थात् नायकजी पकड़े गये तिस पर उत्तर माँगा जा रहा है। व्यभिचारियों की बड़ी दुर्गति होती है।

टि०—इस श्लोकार्थ के पूर्व चरण में "उत्प्रेक्षा" और उत्तर चरण में "विपरीत लक्षणा" है।

इति संक्षेपेण नायिका भेदाः।

अथ नर्म सचिवलक्षणम्

* दोहा *

तस्य नर्म सचिवः सखा तद्भेदक त्रयीह।
पीठ मर्दनामा विटो विदूषको भवतीह ॥९६॥

अर्थ—उस नर्म (क्रीड़ा-रहस्य) के मंत्री अर्थात् मित्र तीन प्रकार के होते हैं—पीठ मर्द, विट् और विदूषक।

टि०—गिर्द घुम्मे, लवर गुड्डे, और चपरक़नाती तीन प्रकार के नायक-यार-ग़ार उर्दू वाले शायर भी मानते हैं। यह तीनों रति-कामना के सहायक होते हैं।

पीठ मर्दोदय लक्ष्यते

* दोहा *

सुदृशां मानविमोचको भवति पीठमर्दस्तु।
चातुर्यानुनयोविटः प्रहसन विदूषकस्तु ॥९७॥

अर्थ—स्त्रियों के मान को छुड़ाने वाला पीठ मर्द होता है। चातुर्य से अनुनय करने वाला विट् होता है और हँसी करने वाला विदूषक कहलाता है।

उदाहरणम्

* सवैया *

मान विवर्जि वियोगि वितर्जि,
सुगर्जि घना[1] विकंरत्यभि[2] तोयः
तन्वि[3] विरन्विह राग समन्वित,
चित्त[4] समौ शरणागत गोयः ॥
यत्र[5] परिस्फुरिताधर एष,
विलास विशेष निमेष विलोपः[6] ।
शाव मृगाक्षि कटाक्षउदे[7] स[8],
च धन्य तमस्तव कोपि सकोपः[9] ॥९८॥

अर्थ—बादलों की भाँति चारों ओर से तर्जन करने वाला, गर्जन करने वाला और वियोगी की भाँति मान को छुड़ाने वाला

१—घनं (लि० सं० ४४)। २—करत्नभि (लि० सं० ४४)। ३—तन्वि वितन्विह (लि० सं० ४४) तन्वि वितन्विद (लि० सं० ८६)। ४—चित्रचलत्कर कंजयुगोपः (लि० सं० ४४)। ५—अत्र (लि० सं० ४४)। ६—धरोपः (लि० सं० ४४)। ७—मुदेतिस (लि० सं० ४४)। ८—ठदेति १८२४। ९—सकोपः अशुद्ध पाठः "सकोयः" मिति शुद्धम्।

ऐसा कह कर कि हे तन्वी ! राग समन्युत चित्त को कर, और शरणागत की रक्षा तथा फड़कते हुए ओठों (ओष्ट) पर इस विलास शेष को क्षण भर विश्राम दें अर्थात् अधरामृत पान करने दे। हे मृग शावक नैनी ! (हिरन के बच्चे कैसे नेत्र वाली) तेरे से कोप कटाक्ष का जिस पर हृदय हो वह धन्यतम है।

विटोदाहरणम्

* सवैया *

त्वामिह कुंजवनं[1] गत निद्र,
उपास्त उपाहित लोक विरक्तिः।
त्वद्[2]गुण मंत्र जपस्म[3]रणोवत[4],
मीलित दृक च विहातुम शक्तिः ॥
अद्य सपद्यभि-गम्य कृतार्थ-
तरः करणीय उपाधिक[5] भक्तिः।
गच्छतु सिद्धि वरं ददती[6] सु,
प्रसादवती भवती[7] शिव शक्तिः[8] ॥६६॥

अर्थ—जिसकी निद्रा चली गई है अर्थात् सोता ही नहीं, और इस कुंज वन में तेरी आराधना करे। जो संसार से विरक्त

१—वने १८२४। २—तद (लि० सं० ४४)। ३—जपस्मरणेव १८२४। ४—स्मरणेवत (लि० सं० १४)। ५—उताधिक भक्तिः (लि० सं० ४४)। ६—भवती (लि० सं० ४४)। ७—भवती के स्थान में ददती पाठ है और ददती के स्थानमें (१८२४) में भवती कहीं कहीं है। ८—भक्ति (लि० सं० ४४)।

हो गया है अर्थात् विरक्ति सी हो गई है और तेरे गुणों को ही मंत्र मान कर जाप कर रहा है। तेरे स्मरण में नेत्र बन्द किये हुए है। तेरे त्याग में जो सर्वथा अशक्त है अर्थात् तुझे छोड़ ही नहीं सकता (उसे) आज शीघ्र ही प्राप्त हो (मिल) कर उसे अत्यन्त कृतार्थ और उस अधिक भक्ति वाले को सिद्ध-वरदान देती हुई (सहवास करती हुई) प्रसादवती (अनुग्रहवती) शिव-भक्ति के सदृश बन जा !

अथविदूषकोदाहरणं

❀ सवैया ❀

आ नयनाय चलन्नयना[१],
मचलन्नभि[२] गम्य नगम्य[३] शशास।
चाटु वचो भिरिहाऽऽनयदा शु,
च गूढतया शयनाऽध उवास॥
छद्म विधाय सुपक्ष्म मुखी,
परिरब्धु मना पतिराकुल आस।
नन्द उपागत[४] इत्यभि धाय च,
तौ सभयौ स निरीक्ष्य जहास॥१००॥

१—धाम (लि० सं० ६६)। २—चल.ञ्जनाम शर्नं रभि गम्य विनम्य शशास (लि०सं० ४२)। ३—प्रिये. दृशः सास (१८२४)। ४—घोर उपागत. इत्यभि धाय च तौ सभयौ स निरीक्ष्य जहास पाठा-न्तरम् (लि० सं० ४४)।

अर्थ—चंचल नेत्र वाली, [न गमन करने वाली को, उस के समीप जा कर अपने चाटु वचनों (खुशामदाना तरीक़ा) से वहाँ वनाकर शीघ्र ले आया और छिप कर उस (नायिका) की खाट के नीचे (बैठ गया)। छल, कपट करके उस उत्तम कमल वदना (कमल जैसे उत्फुल्ल नेत्र वाली) से ज्यों ही प्रियतम आलिङ्गन में रत हुआ—सलग्न हुआ ही कि ऐसा कह उठा कि "नन्द बावा" आ गये। दम्पति को सभय देख कर फिर आप हँसने लगा।

टि०—नायिका आती न थी, मान कर रही थी। उसे छल, कपट और चाटु शब्दों में वह (नर्म मन्त्री) मना लाया। तदुपरान्त छिप कर नायिका की खाट के नीचे जा बैठा। ज्यों ही वह (नायिका) प्रियालिङ्गन में तत्पर हुआ कि वह पुकार बैठा कि "नन्दजी आ रहे हैं" वह विचारी नायिका नायक-युक्त भयभीत हो गये। उन्हें भयातुर देख हँसने लगा अर्थात् इस प्रकार माननी के मान का उपहास किया।

अयमिति त्रिविधोनर्म सचिवः

अथोत्तमा मध्यमाभेद त्रयम्

❁ दोहा ❁

अहिते प्रिये हितोत्तमा, हिते हिता मध्या च।
अधमा स्यादहिता हिते, चल प्रीति रोषात् ॥१०१॥

अर्थ—अहित-प्रिय में जो हित करे वह उत्तमा और हित करने वाले प्रियतम पर हित करे वह मध्यमा, और जो प्रिय के हित करने पर अहित करे और प्रीति एवं रोष को भी करती रहे वह अधमा है।

अथोत्तमोदाहरणम्

* सवया *

विज्ञ तर स्तरुणो[1] धन वानसि,
पारगतो[2] निगमस्य यथापि ।
कौतुक केलि कला कुशले न,
भृता[3] भवता[4] भुवि कीर्ति कथापि ॥
श्री करुणामय पश्यसिनो,
करुणार्द्रदृशा यदपि त्व मथासि ।
जीवित[5] एप तवस्मरणे न,
सजीवत[6] जीवित नाथ तथापि ॥१०२॥

अर्थ—अत्यन्त विद्वान एवं तरुण, धनवान तथा वेदशास्त्र के पारंगत और कौतुक तथा काम क्रीड़ा में परम कुशल कि जिसकी कीर्ति-कथा भुवन-व्यापक अर्थात् पृथ्वी में भर रही है—फैल रही है। ऐसे हे श्री करुणामय ! करुणा की दृष्टि से क्यों नहीं देखते ? आपके स्मरण से ही जीवित हैं। हे जीवित नाथ ! (संजीवन प्रद) तुम्हारे स्मरण से ही तो जीवन है। (परन्तु) (विना मिले) यह जीना जीना नहीं है। अर्थात् जीवन नहीं के समान है कि जब तक आप नहीं मिलते।

टि०—ऐसी धारणा वाली उत्तमा कही जाती है।

१—तरणो (१८२४)। २—पारगो (लि० सं० १४)। ३—भृता बहुशो भुवि (लि० सं०४४)। ४—जावन (लि० सं० ४४। ६६)। ५—जीवत (१८२४) ६—सुजीवति (१८२४)।

अथमध्यमा यथा

* सवैया *

कुपिता कथ मद्य चलन्नयने,
नयने गमिते कथ मन्य गतिं।
न कथं कथ मन्य शरण्य जने,
किल कोपि दधाति न कोप मतिं॥
इति सोपि निशम्य शिरोपि विनम्य-
च ता मधि गम्य चकार नतिं।
सहसै व मुखे परिचुंवित[१] वत्यु-
पलभ्य तथा परिरभ्य पतिं॥१०३॥

अर्थ—हे चंचलाक्षी (चंचल नेत्रे) आज क्यों कुपित हो रही है। तेरे नयन अन्य गति को क्यों प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् वक्र-दृष्टि क्यों है? जो शरण में न हो उस पर कोई कोप करता अर्थात् मैं तो शरणागत हूँ (यद्यपि नायक का यह भाव नहीं है केवल कथन में पांडित्य है) ऐसा सुन कर (नायिका) शिर को नीचा करके (लज्जित होकर) उस (नायक) को प्राप्त होकर उसे प्रणाम किया अर्थात् उससे जा मिली और प्रणय को प्राप्त कर उसका मुख चुम्बन करने लगी। और सहसा (अकस्मात्) रति को प्राप्त हुई।

इति नायिका भेदान्तराणि।

१—परि चुंवति साप्युपलभ्य (लि० सं० ४४)।

अथ अधमोदाहरणम्

* सवैया *

काकुवचो गुरुतर्जित[1] मान,
गभीर गिरा भवती गुरु गर्जित ।
वक्रदृशोः कुजक्रान्त[2] मुखी,
श्रुतिसीम्नि जुपोरचरुषो भरमर्जित ॥
कोप लसन्मुख मंडल मंडित,
भारुणि मेव मनो मम भर्जित ।
तिर्यगटत् कुटिलभ्रू[3] तव भ्रमिता,
भृकुटी तु कलत्र वित्तर्जित[4] ॥१०४॥

अर्थ—काकोक्ति से, गुरुओं (कुटुम्बी बड़े महानुभावों) से जो मान विवर्जित है अर्थात् जिसको कुटुम्बी भी आदर नहीं देते। अत्यन्त गंभीर-स्वर वाली गर्जना कर रही है। वक्र नेत्र (तिरछे नयन) युक्त, लाल मुँह वाली (अरुण वदना) कोप युक्त, कानों की सीमा का सेवन करने वाली (कानों की कचो) क्रोध के भार से दबी हुई कि जिसके मुख-मण्डल की आभा शोभित है और लालिमा मेरे मन को मानो भूंज रही है—जलाये डालती है। टेढ़ी

१—गर्जित १८२४। २—कान्तिमुखी १८२४। ३—(दभ्रु) १८२४। ४—विनर्जति (लि० सं० ४६) यह श्लोक लि० सं० १६४४ में नहीं है।

चलती हुई। घूमती हुई कुटिल भौंहों से आज मुझे ताड़ दिया गया अर्थात् मुझे घर से निकाल बाहर किया है।

टि०—कर्कशा क्रोधवती ने नायक को धक्के देकर घर से निकाला है उसका दृश्य है।

इति नायिका नाम भेदान्तराणि।

अथ सखी दूत्योलक्षणं

* दोहा *

सुख शिक्षादिक कारिणी सहचारिणी सखीति।
दंपत्योर्दूतत्व कृति चातुरतरा दूतीति ॥१०५॥

अर्थ—सुखद शिक्षाओं की करने वाली-नित्य साथ रहने वाली सखी कहलाती है और दम्पति (नायक और नायिका) के दूतत्व क्रिया के करने वाली का नाम दूती है।

सखी यथा

* सवैया *

संतत मेव तदेव तवोचित,
तमस्य मनो रुचि तस्य विधानं।
चारु वक्षः सुदृढं परि रंभन[1],
मुदत्र सितानन[2] चुम्बन दानं॥

१—रंभणं (लि० सं० ४४)। २—मुल्लसितानन (लि० सं० ४४)।

अन्यद् भूषण मेण दृशा मिद,
मेव सुभूषण मिष्ट निदानं[1]।
त्वं प्रिय वंधु निषंग[2] विरोधिन,
मालि विधेहि कदापि न मानं ॥१०६॥

अर्थ—तुझको सदैव यही उचित है कि इस (नायिका) के मन की रुचि के अनुकूल करना। चाटु वचन बोलना, सुदृढ़ आलिंगन करना, प्रसन्न मुख होकर चुम्बन देना यही तेरा भूषण है। अन्य मृग नयनियों के लिये अन्य भूषण (सोने चांदी) होते हैं। तुझे सदैव अपने प्रिय बांधवों की निषंग (निषिद्धि संग वालो अर्थात् दुष्ट संगति) का विरोध करना और कभी मान न करना।

दूती लक्षणम् यथा

* सवैया *

रजनीय मनन्त सुखैक निधी,
रचनी[3] कर एप सुखाग्रसरः।
इय माल्यतीव पिकी चलय-
त्रिव वायु[4] मुपैति[5] मधुप्रसरः ॥

१—केलिकलादिकुशल चनिरन्तरमन्तरसाहितकाम निधानं (लि० सं० ४४)। २—संग (लि० सं० ६६)। ३—रचनी (लि० सं० ६६)। ४—रजनी १८२४। ५—उपैति मधुपसरः १८२४।

ऋतुराज विराज[1] वने[2] वसति,
प्रिय आलि महा रसरः।
सखि हे विदुषी द्विजराजमुखी,
प्रचल प्रचलाक्षि शुभो वसरः ॥१०७॥

अर्थ—यह रात्रि अनन्त सुख दायक है। चन्द्रमा भी सुख-संचार कर रहा है। कोयल मानो बुला ही रही है। मधु (पराग) का प्रसार (फैलाने) करने वाला वायु वह ही रहा है। वसन्त युक्त वन में प्रियतम वस रहे हैं अर्थात् विद्यमान हैं। हे सखी! तू समझदार है। हे चन्द्रमुखी। हे चंचल नयने! चलिये यह शुभ अवसर है।

अथ दम्पत्यो रन्योन्यदर्शनम्

* दोहा *

प्रत्यक्ते[3] चित्रे च[4] यत स्वप्ने भवति तथैव।
दंपत्यो रिह दर्शनं तदुदाहरण मथैव ॥१०८॥

अर्थ—प्रत्यक्ष, चित्र तथा स्वप्न में तीन प्रकार से दम्पतिके दर्शन होते हैं अब उसका उदाहरण देते हैं।

त्रयमपि यथा

* सवैया *

चित्र पटेति विचित्र रुचिः,
पटुरीक्षित एव विलासयुतः।

१—रुपैति (लि० सं० १४)। २—विराजति राजवने (लि० सं० ४४)। ३—प्रत्यक्ष (लि० सं० १४)। ४—चित्रेथ १८२४।

अन्यद् भूषण मेण दृशा मिद,
मेव सुभूषण मिष्ट निदानं[1]।
त्वं प्रिय वंधु निपंग[2] विरोधिन,
मालि विधेहि कदापि न मानं ॥१०६॥

अर्थ—तुझको सदैव यही उचित है कि इस (नायिका) के मन की रुचि के अनुकूल करना। चाटु वचन बोलना, सुदृढ़ आलिंगन करना, प्रसन्न मुख होकर चुम्बन देना यही तेरा भूषण है। अन्य मृग नयनियों के लिये अन्य भूषण (सोने चांदी) होते हैं। तुझे सदैव अपने प्रिय बांधवों की निपंग (निपिद्धि संग वाले अथात् दुष्ट संगति) का विरोध करना और कभी मान न करना।

दूती लक्षणम् यथा

* सवैया *

रजनीय मनन्त सुखैक निधी,
रचनी[3] कर एप सुखाग्रसरः।
इय मात्यतीव पिकी चलय-
न्निव वायु[4] सुपंति[5] मधुप्रसरः॥

१—केलिकलादिकुफव चनिरन्तरमन्तरसाहितकाम निधानं (लि० सं० ४४)। २—संग (लि० सं० ६६)। ३—रघनी (लि० सं० ६६)। ४—रजनी १८२४। ५—दर्पति मधुरसरः १८२४।

ऋतुराज विराज[1] वने[2] वसति,
प्रिय आलि महा रसरः।
सखि हे विदुषी द्विजराजमुखी,
प्रचल प्रचलाक्षि शुभो वसरः ॥१०७॥

अर्थ—यह रात्रि अनन्त सुख दायक है। चन्द्रमा भी सुख-संचार कर रहा है। कोयल मानो बुला ही रही है। मधु (पराग) का प्रसार (फैलाने) करने वाला वायु वह ही रहा है। वसन्त युक्त वन में प्रियतम वस रहे हैं अर्थात् विद्यमान हैं। हे सखी! तू समझदार है। हे चन्द्रमुखी। हे चंचल नयने! चलिये यह शुभ अवसर है।

अथ दम्पत्यो रन्योन्यदर्शनम्

* दोहा *

प्रत्यक्षे[3] चित्रे च[4] यत स्वप्ने भवति तथैव।
दंपत्यो रिह दर्शनं तदुदाहरण मथैव ॥१०८॥

अर्थ—प्रत्यक्ष, चित्र तथा स्वप्न में तीन प्रकार से दम्पतिके दर्शन होते हैं अब उसका उदाहरण देते हैं।

त्रयमपि यथा

* सवैया *

चित्र पटेति विचित्र रुचिः,
पटुरीक्षित एव विलासयुतः।

१—रुपैति (लि० सं० १४)। २—विराजति राजवने (लि० सं० ४४)। ३—प्रत्यक्षं (लि० सं० १४)। ४—चित्रेथ १८२१।

कृष्णा वेणी नदी के संगम का प्रदेश है, सदुपायों से विजय किया श्रावण कृष्णा नवमी तिथि, रेवती नक्षत्र, धृति योग में सूर्योदय के समय सराहनीय दिन में (सुअवसर पर) देवदत्त ने इस ग्रन्थ को रचा-समाप्त किया।

इति शृङ्गार विलासिनी सम्पूर्णम्

शुभम् भूयात्

सम्पादक-परिचय

शृंगारैक विलासिनी, शत एकादश पद्य।
शीघ्रबोध श्रुतबोध लौं, करत पढ़त जे मद्य ॥१
श्री शृंगार विलासिनी, दिव्य गिरा कवि दैन।
शोधन सम्पादन करी, भूति चूकि छमि दैन ॥२
पूज्य पितामह **लालमणि**, पितु श्री **चन्दीदीन**।
तिन को माँझिलो सुत सुकवि, **गोकुलचन्द्र** प्रवीन ॥३
लखुना नगर वसत सुघर, प्रान्त **इटाये** माहिं।
ताको वासी ह्वै तऊ, वस्यो **भरतपुर** माहिं ॥४
श्री ब्रजेन्द्र की प्रजा हौं, राज्य-भक्ति लवलीन।
दुर्गति काल दुरन्त तें, कछुक दुखरा तहलीन ॥५
पै अब परमानन्द तें, समय सुअवसर पाय।
पुत्र, कलत्र, कुटुम्ब युत, सुख जीवनु अधिकाय ॥६
सम्वत् शशि ग्रह अंक नव, क्वार दशहरा वार।
कवि प्रिय गोकुलचन्द्र किय, शोधन गुरुतर भार ॥७
श्री ब्रजेन्द्र शासन समय, इक नव ग्रह शशि जान।
श्री ब्रजेन्द्र को ध्यान करि, पूरन कीन्ह निदान ॥८

इति श्रीमन्महाराजाधिराज श्री सवाई ब्रजेन्द्र श्री भरतपुराधीश श्री १०८ श्री ब्रजेन्द्रसिंहजी राजाधिराज विजय राज्ये "श्री शृंगार विलासिनी" सटीक, संपूर्तिमगात्।